मर्यादित

हरदर्शन सहगल

अनुराग प्रकाशन
नई दिल्ली-110030

[illegible] लेखक

मूल्य 50 00

प्रथम संस्करण 1990

प्रकाशक [illegible] प्रकाशन
1/107 [illegible], [illegible] दिल्ली 110030

मुद्रक [illegible], दिल्ली 32

MARYADIT (Stories) by Hardarshan Sahagal Rs 50.00

प्रिय वेट मुकेश को

आई जव वेटी, (कविता)
तव एक दिन वेटा भी,
तेरे लिए, मेरे घर, मौर घर आयेगा

सिद्धराज—मथिलीशरण गुप्त

आमुख

मेरे करीब इस वक्त, जो कुछ है सीमित है किन्तु यही 'सीमित', विस्तत विसगतियो और विडम्बनाओ का अतिक्रमण करता हुआ असीमित होता चला जाता है और विस्फाटक स्थितियो का साक्षी बनता है। मिसाल के तौर पर, मेरे दफ्तर की कथा—मामूली रद्दोबदल के साथ—हिन्दुस्तान के हर दफ्तर की कथा लगेगी। यह बात अपने देश की प्रत्यक घटना के परिप्रेक्ष्य म दखी जा सकती है।

अत चारो ओर अत्यत भयावह नितात असगत स्थितियाँ हैं, जिनका *आज कोई भी स्पष्ट समाधान नजर नही आता।* *सामाजिक*, राजनैतिक तमाम मूल्य चरमरा रहे हैं।

परम सत्य को नम कर, इम तरह से हम तराशते चले जा रहे हैं कि वह हम अपनी-अपनी सुविधानुसार तकमगत दीखने लगे।

सुहावने सपने धुध म खो रहे है, उन पर बेशुमार धूल की परतें जम गयी हैं। तब हर तरह के ऊलजलूल सपने, आज के जीवन-सत्यो से, किसी भी सूरत मे दोयम नही रह गये।

नियति की विडम्बनाएँ, त्रासदियाँ, हर मोड पर हमारा पीछा कर रही है। हमारा मजाक उडा रही है। इनके स्वर मे स्वर मिलाकर हँसने के सिवा हमारे हाथ कोई विकल्प नही है।

इन्ही विद्रूप स्थितियो म से हमे रास्ता तलाश

सभवत आज व कुछ लेखको की कहानियाँ, इस दिशा म हमारी सहायक सिद्ध हो।

लगातार खुरदरी जमीन पर चल चल कर फटे, लडखडाते पैरो को हरी दूब का कोई छोटा-सा टुकडा जरूर नजर आना चाहिए। आयगा।

प्रकाशन क अवसर भाई श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र एव श्रीकृष्ण (प्रवीण प्रकाशन) को धन्यवाद है जिन्होने इसे शीघ्र प्रकाशित करने मे सहयोग दिया।

—हरदर्शन सहगल

क्रम

मर्यादित

"खट-खट"

'कौन ?'

"मैं हूँ "

"अच्छा-अच्छा आइए।"

"अकेले आये हैं आप ?" दरवाजा खोलते ही, सुनना ने पूछा। साड़ी का पल्ला नीचे की ओर झूल रहा था। उसे हाथ से थोड़ा ऊपर किया तो वह पुन नीचे सरक गया।

"हां," विनोद ने सुनना की ओर देखा। फिर बड़े इत्मीनान से साइकिल को दीवार के सहारे अटकाया। ताला लगा कर, गली के दूसरे सिरे की ओर देखने लगा।

"हूँ हूँ' सुनना ने हँसने का यत्न किया, 'मजाक करते हैं भाई साहब। बहन जी पीछे रह गयी है। उन्हीं को देख रहे हैं ना ?" सुनना भी गली के दूसरे मोड तक नजर दौडाने लगी। आध एक मिनट तक जब कोई नजर नहीं आया, तो निराशा प्रकट करते हुए कहा, "आह, सचमुच ही नहीं आई। लाये क्यों नहीं आप ? अकेले क्यों आये ?"

'तो लौट जाता हूँ।" विनोद हँसते हुए एक कदम पीछे हट गया। इसके साथ ही उसकी अँगुली में साइकिल की चाबी का छल्ला घूमने लगा।

'अरे नहीं! आप तो बस छेड़ने से बाज नहीं आयेंगे। ...

[illegible] और नजर घुमाते हुए विनोद की बाँह पकड़ ली और अन्दर की ओर खींचा : बाहर खड़े-खड़े तमाशा बना रहे हैं।"

विनोद चलकर ड्राइंग रूम में बैठ गया। पीछे-पीछे सुनैना बाहर के दरवाज़े की चटखनी लगाकर उसके सामने आ खड़ी हुई, "क्या, क्या हाल हैं बच्चे जी के? बच्चे तो सब ठीक हैं ना?"

[illegible] ही डाँट का आँखें दुखने लगी थी। [illegible] उसे [illegible] न रहा। वापस आया था यह बोली—आप अपने ही हो आओ [illegible]।

विनोद ने वाक्य अभी पूरा नहीं किया था कि सहसा सुनैना का ध्यान बँट गया। वापस जाकर वह चटखनी खोल आयी।

"अब कहाँ चली गयी थी?" विनोद ने माथे पर पीठ टकाते हुए [illegible] उठाई।

"आपकी गाड़ी बाहर खड़ी है, सो चटखनी खोल आई।"

[illegible] दरवाज़ा भी खोल आना। विनोद मुस्कराने लगा।

नहीं आप [illegible] सुनना [illegible], आप गाड़ी [illegible] आना।

[illegible] नहीं [illegible]। [illegible] भी नहीं।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उसकी साडी मे सरसराहट हुई है। वह साडी समेटन लगी। जब विनोद कह रहा था सहल साहब बाहर गये हुए है तो उसके कदमो मे हरकत होन लगी। बैठिए ना वे उत्तर म अनायास बोल उठी "बिटटू, नीच उतर। देख अक्ल आय ह। पानी ला।

बिटटू छत पर पतग उडा रहा था। ऊपर मे कोई उत्तर नही आया। हो सकता है सुनना की आवाज छत तक भी न उड सकी हो।

"आप तो ख्वामुख्वाह तकल्लुफ मे पडती ह। प्यास होगी तो अपन आप भरकर पी लूगा। कौन से पराय घर म बठा हूँ।

'ऐसा कौन कहता है' सुनना विनाद को एकटक देखती हुई उसकी ओर बढ गयी। उसके कालर पर जमा हुआ कोई पदाथ अपनी अँगुलिया से खुरचने लगी, 'बहन जी आपका ध्यान नही रखती।'

'मामूली है। इतन स क्या पर्सनेलिटी मे फक आ जाता है।' विनोद न सुनना को रोकन का प्रयास किया तो क्षणाश को दोनो की अँगुलिया टकराई उलझी और शायद एक झनझनाहट-सी पैदा हुई।

हठात सुनैना चिल्ला पडी, 'बिटटू क्या बहर हो गये हो! सुनते नही! देखा अक्ल आये है।

अब की, "आया मम्मी' बिटटू की आवाज गूज उठी।

सुनना थोडा पीछे हटती हुई सामन सोफे पर जाकर बठ गयी।

क्या परेशान होती ह! बच्च है। खलन दीजिए,' कहते-कहते विनाद न मेज के नीच पडी गेंद को हिट किया। गेंद दीवार स टकराती हुई इधर-उधर फुदकन लगी।

सुनना हँसन लगी, 'आप भी बस भाई साहब बच्च ही है।

बच्च तो सबको अच्छे लगत ह। है ना! जब हमार बच्चे बडे हो जायेंगे तब हम बच्चा नही रहन देंग। क्या?"

अब की सुनना और जोर स खिलखिला पडी। इस प्रक्रिया म उसका पूरा छरहरा बदन लोच खा गया। गाल म गड्ढा बन गया।

बहुत अच्छी लगती हैं ऐसे। आपकी बहन जी को बताऊँगा कि आप भी छोटी गुडिया बन जाती ह।' विनोद न उसे भरपूर दृष्टि से द सुनना सकुचा कर उठ खडी हुई।

वठी रहिए। मैं आपका मजा देने तो नही आया।'

सुनना एक कदम दायें वढकर रुक गई। इधर उधर देखा। अपना ही ड्राइग रूम जैसे अजनवी वन गया। वहा के पेंटिंग्ज, फर्नीचर, पखा, सव मौन हाकर जस उसे घूरने लगे जहा वह अकेली पड गई थी विनाद के सामने। उस विनोद के सामन, जिसे वह अपना सवसे अधिक हितपी मानती थी। देवर भाभी के स्तर पर, उसकी पत्नी के सामने उससे मजाक, छेडछाड करती। उससे सटकर अपना कद नापती।

तभी सरसराता हुआ हवा का एक तेज झाका आया। जोर से खिडकी खुल गयी और फिर वैसे ही बन्द हो गयी। सुनंना ने अपनी थोडी लम्बी ठुड्डी कधे से रगडी। उस लगा हवा के झोके के साथ ही कमरे का सारा सामान एक एक कर गायव हो गया है। वहाँ रह गयी है वह। और उसके सामने विनोद। वहा सिफ वह है सुनना या सिफ विनोद है।

इस रहस्यमय वातावरण के प्रभाव से उबरने के लिए वह फिर स बिटटू पर चिल्लाने को थी कि तभी दरवाजा वज उठा।

'कौन ?" वह किंचित घबराहट के आवेग से दरवाजे की ओर लपकी।

हम है मम्मी "

ओह प्रीति" दरवाजा खोलन के साथ उसके मुह से निकला।

प्रीति अपनी किसी सहेली के घर पढने गयी हुई थी। उसके हाथ म दो किताबें पेंसिल और एक कापी थी। उसने ड्राइग रूम म झाका।

आ जाओ प्रीति, देखो अकल आय है।" सुनना ने कहा।

ओह अकल!" प्रीति न हाथ लहराते हुए कहा 'नमस्ते! अकले ही? छोट चिकू का नही लाय ?"

उनकी आँखें दुख रही ह। इसीलिए तुम्हारी आटी भी नही आयी। इसी वात से तुम्हारी मम्मी भी वुरा मान रही हैं। उसन प्रीति के सिर पर हाथ फेरा पढाई कमी चल रही है ?'

ठीक ही है अकल। अव तो दस रोज म परीक्षाएँ शुरू हो जायेंगी।' उसन दायित्वयुक्त स्वर निकाला, किन्तु उस स्वर म प्रस्फुटित कोमलता दोनो को ही मोहित कर गयी।

"बडी सयानी हो चली है हमारी बिटिया।" विनोद ने उसके गाल को थपथपाते हुए कहा।

"कुछ भी कहो, भाई साहब," सुनेना ने प्रीति को अपनी ओर [illegible] जोडा, 'लडकियाँ फिर भी रिस्पासिबिल होती हैं। कुछ-न-कुछ [illegible] भी काम देख लेती हैं। एक वह हजरत बिट्टू हैं कि कुछ सुनते ही नही। या सुनते है तो बस 'आया मम्मी' कहकर अपनी ड्यूटी पूरी कर देते है।" आखिरी लफ्ज तक आते-आते उसकी जबान मे तल्खी टपकने लगी।

"यह तो है ही," विनोद ने समर्थन मे गर्दन हिलायी। फिर हँसने लगा, "इतना गुस्सा आपको शोभा नही देता। बात दरअसल यह है कि जब हम बिट्टू जितने थे, बिलकुल ऐसे ही करते थे।"

प्रीति बडी उत्सुकता से उनके सवाद सुनती, अभी तक वहीं खडी थी और सुनैना जाने कैसी नजरो से उसे घूरे जा रही थी।

प्रीति पूछ बैठी, "क्या बात है मम्मी, आज फिर बिट्टू ने क्या किया?"

"तू यहाँ क्या खडी है! जाकर चाय बना। बडो की बातो मे नही पडते।" अनजाने ही सुनैना उसे डाँट बैठी।

प्रीति सकपका कर वहा से खिसक गयी। कुछ-कुछ अपमानित-सी, कुछ-कुछ आशकित-सी भी कहीं कोई गम्भीर बात तो नही?

'क्या हो गया आपको," विनोद ने मुस्कराने की कोशिश की "अब चाय रहने दीजिए। चलूगा। आपके कामो मे बाधा बन के बैठ गया हूँ।"

'घर के काम तो होते ही रहते है। आप कौन-सा रोज-रोज आते है।"

'अकेला तो हर रोज आ सकता हूँ।" विनोद थोडा जोर लगा कर हँस पडा।

'तो कौन रोकता है, आपको।" सुनना ने इधर उधर देखा। फिर विनोद पर दृष्टि पडते ही साडी का पल्ला ब्लाउज मे खोस लिया।

'पहले-पहल तो लगा था आप मुझे बाहर से ही भगा देंगी, श्रीमती सुनना देवी जी!"

सुनना को लगा जैसे विनोद ने बहुत ही कोमल अक्षर लिख दिये हैं

अपनी जवान म, श्रीमती सुनैना देवी जी। वह उठ कर स्विच-बोर्ड तक पहुँची। रगुलेटर को घुमा कर पंख का एक नम्बर तज कर दिया। फिर धीरे म कोई फिल्मी धुन गुनगुनाती गुनगुनाती सहसा जोर स बोल पड़ी प्रीति, क्या कर रही हो ? चाय बनी कि नहीं ?"

वाह ! इतनी जल्दी ! इतनी जल्दी तो कच्ची चाय बनती है। मैं तो बिना चाय ही भागन को तयार हूँ।

आप तो वास्तव म, हमारी दूसरी तरह की खबर लन आय हैं। हम नहीं बोलत। जाइए।'

ऐस ! आपको नाराज छोड कर ! यह कस हो सकता है !' विनोद ने सन्टर टेबल पर पडी सुनैना की अँगुलियों के करीब अपना हाथ रख दिया और मुस्कराने लगा।

हैं आप पूरे शरारती' सुनना भी मुस्करायी, "बस मैं नाट कर रही हूँ आपकी आवाज और हँसी की गूज आधी दबी पडी है। अब की बहन जी को जरूर साथ लकर आइएगा।

'अगर तैयार न हो तो उसे उठा कर ले आऊँगा।'

ही ही ऽऽ' करती हुई सुनना जोर से हँस पडी मजा आ जाता है, आपकी बातचीत म। तो ठीक है अकेले ही आत रहिए।' फिर दरवाज की ओर देखकर प्रीति पर झल्ला पडी, कहा मर गयी !

तभी प्रीति चाय की ट्रे लिये हुए दाखिल हुई। ट्रे को सेन्टर टेबल पर रखकर जान लगी तो सुनना न उस रोका, बठ जा। थोडा नाश्ता तू भी कर ले।"

प्रीति मम्मी के साथ सट कर आहिस्ता-आहिस्ता चाय पीन लगी। चुपचाप।

हाँ क्या कह रह थ भाई साहब ?" सुनना ने मौन तोडना चाहा।

कुछ नहीं। मैं तो कुछ नहीं कह रहा था। विनोद छत की ओर घूमत पंखे पर दृष्टि ठहराने का प्रयत्न करन लगा।

सुनैना अच्छा कहकर रह गयी।

प्रीति कर आराम स भुजिया चबा रही थी। सुनैना न उसे निर्देश दिया 'जाओ विट्टू को बुला लाओ। वह भी थोडा खा पी ले।'

"मुपसे लिखा लो मम्मी, वह पतंग छोड़कर नह[illegible]।"

"अच्छा जाओ। तू भी थोडा खेल [illegible]।" आवाज [illegible] खीज उभर आयी।

प्रीति चली गयी जैसे सारे श दों को बिखेरती हुई। मु[illegible] विनाद फीकी मुस्कराहट स श दा का पकडन का यत्न [illegible] विफल हाने रह। अन्त मे विनोद न दो श द छूट निकाल "अब चलूगा" और उठ खडा हुआ।

'बठिए ना।" सहज प्रतिक्रिया हुइ।

"बहुत देर हो गयी है। आपकी गली म कोई विशिष्ट साहब रहत है ?"

"हा। एकदम सिर पर मकान है। अब समझी आप आत तभी ही उधर देख रह थे।'

"जी हाँ। उनसे एक निहायत जरूरी काम आ फँसा है।'

'मिल लीजिए। पर यह मत बताइएगा कि हमारे यहाँ स होकर आ रहे है। भाई साहब आप नहीं जानत यहां के लोग खास तार स औरतें कितनी टुच्ची है।'

'बेफिक्र रहिए। इस किस्म का टापिक न ही चले तो बहतर, वरना मुझे बात का घुमाना नही आता—हा। जो कोई काम हो नि सकाच बता दीजिए या जब भी जरूरत हो संदेशा भिजवा दीजिएगा। हा, आप कब आ रही ह हमारी तरफ ? '

'सहल साहब आयेंगे, मै ता तभी निकल पाऊँगी। बहन जी का हमारा ध्यान है। आप खरियत जानने आ गय। हमारे लिए यही बहुत है।" बाला की लट का ठीक करते हुए सुनना न दरवाजा खोल दिया 'अच्छा तो ठीक।'

"टाटा। विनोद न चारा आर देखते हुए साइकिल चला दी।

गली का मोड आने स पहले उसन साइकिल का बहुत धीर कर दिया। चलती साइकिल से नेम प्लेट पढी, राजाराम विशिष्ट', फिर साइकिल का तेज रफ्तार से आगे बढा ले गया।

शादी की सालगिरह

वे दोनों घर से बहुत दूर आ निकले थे जैसे किसी खास चीज की तलाश में हों।

यहां आकर वे रुक गये।

आसपास कहीं कोई नहीं था। दूर दूर तक वीरानगी की छाया फैली पड़ी थी। कुछ आक, कैर कीकर की झाड़ियां या गिने चुने सूखे सूखे खेजड़े के पेड़ थे। थोड़े फासले पर जीप खड़ी थी।

अचानक मदन ने सुलक्षणा को अपनी ओर खींचा। सुलक्षणा बुरी तरह से अचकचा गयी। उसके होंठ हिले—शायद कुछ कहा जो किसी को सुनायी नहीं दिया। न मदन को और न ही शायदस्वयं सुलक्षणा को।

दिन सर्दी के थे। दोनों ने गर्म कपड़े पहन रखे थे। राजस्थान की सर्दी की धूप में जितना दम हो सकता है पूरा था। इसके बावजूद मदन ने देखा सुलक्षणा के होंठों के छोटे छोटे कपाट बज रहे हैं।

पेड़ पर कोई पक्षी आ बैठा। पत्तों में खरखराहट हुई। सुलक्षणा ने चौंक कर गर्दन ऊपर घुमा दी

"बस," मदन जोर से हँस पड़ा 'घबरा गयी मेरी हसनी! कौन है यहाँ जिससे सहमती सिमटती जा रही हो?'

'क्या इसीलिए यहाँ लाये थे?' सुलक्षणा ने पूरी शक्ति बटोर कर यह शब्द निकाले।

"तो फिर और किसलिए मेरी जान!" आखिरी शब्द तक आते आते

मदन की आवाज बहुत ढीली पड़ गयी। उसे खुद अनुभव हुआ कि वह कोई बनावटी वाक्य बोल रहा है, जो वह नहीं बोलना चाहता। उसे बोलना चाहिए। वह पूरी शरारत पर उतर आया। घूमा और ठीक सुलक्षणा के सामने आ खड़ा हुआ। सुलक्षणा ने उसके भारी हाथों का प्रभाव अपने हाथों पर अनुभव किया।

क्या मैं घर में नहीं मिलती थी।' पतले स्वर के साथ छरहरे बदन में लोच पैदा हुई। सुलक्षणा ने इधर उधर देखा और करीब पड़े एक पत्थर पर जाकर बैठ गयी। हवा में उसकी पीले फूलों वाली साड़ी 'फरर फरर' करने लगी।

अब मदन फिर उसके पास झुक कर इस अंदाज से खड़ा हो गया कि उसकी हरी धारीदार टाई सुलक्षणा के गाल सहलाने लगी।

"यह सब क्या करते हो जी! अगर कोई इधर से आ निकला तो क्या कहेगा!'

'कहेगा क्या? हां सोच सकता है' मदन ने स्वर को नम्र करते हुए उत्तर दिया 'कि इसकी लुगाई घर से भाग गयी होगी।'

यदि उसने आपसे पूछ ही लिया तो?"

तो हम कह देंगे—हां। लेकिन अब आखिर हमने इसे खोज निकाला है।' कहते-कहते मदन एक झटके से पीछे हट गया। दो हिरन कूदते-फांदते पास से निकल गये।

सुलक्षणा हँसी दबाती हुई बोली—'कोई ढंग की बात करो।'

'कौन सी बात? तुम्हीं कुछ कहो।' मदन इधर उधर देखने लगा। कुछ देर तक चुप्पी बनी रही। फिर मदन ने कहा—'सुलक्षणा, तुम बहुत अच्छी हो। सुलक्षणा तुम बहुत सुंदर हो।"

क्या यही कहने के लिए यहां आये थे?' सुलक्षणा व्यंग्य से हँस पड़ी।

यह कोई ऐसी हँसी नहीं थी जिस पर मुग्ध हुआ जा सकता। फिर भी मदन थोड़ा आगे सरका। सुलक्षणा के दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया।

'थोड़ी शर्म लाज भी होनी चाहिए" सुलक्षणा ने हाथ खींचते हुए

कहा, 'यहाँ ला पटका। मेरी तो कमर दर्द करने लगी है।' वह अपनी हथेली पीछे ले गयी और पूरे शरीर को अकड़ाने के साथ मुँह से 'उंहं' की आवाज निकाली।

'बड़ी मुश्किल से साहब को पटा कर जीप लाया था अपनी महारानी जी का घुमाने, बहलाने, मगर यहाँ सब बेअसर हुआ जा रहा है।' मदन ने जरा सामने झाड़िया के पास विचरते हुए कपोत युग्म से कहा।

'फिजूल की बातें न बनाओ स्टनो साहब। चलो सीधी तरह से वापस।'

मदन चुप रहा। जाने क्या सुलक्षणा क्षण प्रतिक्षण अधिक आकुल हो रही थी— 'चलते हो कि नहीं!' स्वर में उग्रता थी।

'बस एक दफा...' मदन ने दोनों बाँहें फैला दीं 'किरमी हीरा की तरह जोड़ा जोड़ा, तब फिर चल देंगे।' कहते ही चारों ओर देखने लगा।

'बे श र म...!' सुलक्षणा एक झटके से उठी और जाकर जीप में बैठ गयी।

यदि 'बेशरम' शब्द सुलक्षणा की कुलबुलाहट को अभिव्यंजित करता तो निश्चित रूप से मदन का रोआं रोआं आनंदित हो उठता। वह कुछ अव्यक्त अंतर्निहित की प्राप्ति से झूम उठता, किंतु 'बेशरम' के अक्षरों को उसने इस तरह बेरहमी से तोड़-तोड़ कर नुकीला बना दिया था कि उसके दंश से मदन गहरे तक तिलमिला गया। उसे आगे सुनायी पड़ा— 'चलाओ जीप। जो मिलता है न्योता देते चलते हो। ढेर सारे काम तो मुझे ही निपटाने हैं।'

अब की बिना कुछ बोले मदन जीप चलाने लगा। उसका चेहरा एकाएक विकृत-सा हो गया जैसे मुँह में एक साथ कई एक कड़वे घूँट भर गये हों जो न अन्दर जाते हों और न ही बाहर उगले जा सकते हों।

मंद हवा के झोंके लगातार अन्दर भरते चले गये।

गली के मोड़ पर मदन ने जीप को ला खड़ा किया। सुलक्षणा को उतरने का संकेत कर स्वयं अपनी सीट पर जमा रहा।

'आप ?' अपनी साडी समेटते हुए सुलक्षणा नीचे उतरी।

'मैं मैं आफिस।'

'आज की छुट्टी ली है ना !'

'जीप कौन-से मेरे बाप की है। इसे तो पहुँचा आऊँ।'

सुलक्षणा ने दायें बायें देखा। कहीं कोई ऐसा सवाद नहीं मिला जिसे पकड़े रख सकती।

घरर घरर की आवाज हुई और जीप जसे भारी भारी कदमा से सरकने लगी।

सुलक्षणा कुछ देर तक वहीं खड़ी रही। जीप दीखनी बन्द हो गयी तो उसने घर की तरफ रुख किया। अँगुलियों में झूलता चाबियों का गुच्छा घर के खालीपन का सकेत कर रहा था।

बच्चों के स्कूल से लौटने म अभी बहुत देरी थी। सुलक्षणा ने सोचा पहले सवेरे के पड़े कुछ बर्तन साफ कर डाले। बिस्तर निकालने के लिए कमरे का दरवाजा खोला तो एक कबूतर दरवाजे पर से धूल उड़ाता निकल गया। उसके नथुनो मे एक साथ धूल के कण और अजीब सी बासी गध घुस गयी। तब उसने सोचा, पहले सारे घर की गर्द झाड़ दे। पूरे सामान को नये सलीके से सजा सँवार दे। फर्श को रगड़-रगड़ कर पोंछे। सारे दाग साफ कर दे। सब कुछ तरोताजा नजर आने लगे। नहीं इससे पहले पर्दे धो डाले। प्रेस के बाद उनकी चमक देखने वाला बस देखता ही रह जाय। यह सब तो करना ही है। पहले नई क्राकरी के पैकिट खोल कर देखे। उसी म एक ताजा कप चाय बनाकर पिये ताकि सारी सुस्ती और थकावट दूर हो।

परन्तु कुछ नहीं हो पाया सुलक्षणा से। अपने अन्दर लबे अर्से से जमी परत-दर-परत, क्लांति को समाप्त करने हेतु उन्हीं कपड़ो से पलग पर पड गयी। और अब प्रत्यक्ष रूप से पति की नाराजगी के बारे मे सोचने लगी।

ज़रा-ज़रा-सी बात पर जब-तब नाराज हो उठने की आदत है मदन की। मनाओ तो मान जाता है, पर काफी समय लगता है इस काम मे। इतना वक्त उसके पास नहीं होता। फिर भी निकालती है। मदन की

अप्रसन्नता उदासी उसमें किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं होती।' वह पिछले दस सालों के इतिहास के टुकड़ों में से गुजरती उलझती हुई अंत में आठ रोज पहले की घटना में अटक कर रह गयी।

फिर 21 दिसम्बर आने वाला है। पता नहीं किसने कहा था? मदन ने या सुलक्षणा ने? जैसे गलती से यह वाक्य आपस आप उनके मुंह से निकल गया हो।

हर बार कुछ ऐसा ही होता है इन दिनों। दिनों के अन्दर कुछ बनने और टूटने का अहसास, एक साथ होने लगता है। खुशी के साथ उसके भंग होने का डर। मदहोश उमंगों के साथ तनाव, सुन्दरापन या पेंग बढ़ाते हुए रस्सी टूटने का खतरा। ऐसे ही कुछ भाव लेकर आने लगता है 21 दिसम्बर।

मदन तो कहता है तू इस तारीख को बिलकुल भूल जाया कर। जैसे बाकी तारीखें निकल जाती हैं यह दिन भी चुपचाप निकल जाया करेगा। कोई बाहर वाला याद दिलाने तो आयेगा नहीं। यह कोई होली दीवाली की तरह का उत्सव थोड़े ही है।

किन्तु नहीं। दोनों को ही इसकी आहट अपने अंतस से सुनाई पड़ने लगती है।

'लो 21 दिसम्बर आ गया। स्वागत को तैयार हो जाओ।' चेहरा खिल आया है, सुलक्षणा का। आवाज में खनक आ गयी है।

इससे मदन तरंगित हो उठा है किन्तु लापरवाही जतलाता है—'रहने दे। हम से कुछ होना-हवाना तो है नहीं।'

'मुझसे सब कुछ होता है। तुम ही ढील पड़े रहते हो।' सुलक्षणा उसे छेड़ती है।

कुछ क्षणों के लिए मदन झेंप सा जाता है। फिर बोल पड़ता है—'बातों में तेजी दिखाना तो कोई श्रीमती सुलक्षणा जी से सीखे।'

'जिन जिन बातों की आपको चाह है इस बार वह सब सही। बना डालिए इसी वक्त सलीकेवार कार्यक्रम। आप स्वयं आगा-पीछा सोचते रह जाते हो और दोष मेरे मत्थे जड़ देते हो मिस्टर।' मिस्टर

देती है।

मदन में हरकत होती है। फुर्ती से सुलक्षणा को अपनी ओर खींचना चाहता है तो वह खिलखिलाती हुई दूर जा छिटकती है।

"अब घबराती क्यों हो!" मदन उसका पीछा करता है तो वह शयन-कक्ष में जाकर रजाई में दुबक जाती है। मदन भी वहीं पहुँच जाता है।

'क्या करते हो जी!" सुलक्षणा की आवाज़ में थरथराहट तैर गयी है, बच्चे स्कूल से आते होंगे। उनके लिए नाश्ते का प्रबन्ध करना है। मैले कपड़ों का ढेर लगा पड़ा है। छोड़ो न प्लीज! आपके लिए चाय बना लाती हूँ।"

"बस हो गयी सिट्टी पिट्टी गुम!" मदन उसे रिहा करते हुए कहता है।

'वक्त भी तो देख लिया करो" सुलक्षणा पलंग के नीचे पैर लटकाते हुए एकाएक चंचलता से रसोई की ओर भाग खड़ी होती है—'अभी 21 दिसम्बर की प्रतीक्षा करो।'

मदन उसके पीछे-पीछे रसोई की दहलीज पर जा बैठता है— 'तुममें कभी हिम्मत नहीं आयेगी।"

'देखिए इस बार आपके माता पिता-बहन सब 21 दिसम्बर से पहले लौटेंगे नहीं। आप ही का पूरा सिक्का चलेगा।' सुलक्षणा हँसती है।

मदन जाने क्या गहरी खामोशी में खो गया है।

शाबाश, अच्छे बच्चे किसी बात की जिद्द नहीं करते," सुलक्षणा उसे तिरछी नजरों से देखती है 'बोलो चाय बना दूँ या दूध पियोगे?"

" सुनो! 21 दिसम्बर हमारा निजी त्यौहार है। तुम इसमें और लोगों को क्या शामिल करना चाहते हो?

'जब मैं कभी दूसरों की पार्टियों में जाता हूँ तो हसरत होती है और शर्म भी महसूस होती है कि हमने अपने इष्ट मित्रों को कभी ढंग से बुला कर खिलाया पिलाया नहीं। हर साल बस सोचते ही रह जाते हैं। कई महीनों से मन जाने कह रहा है इस बार कुछ हो जाये।'

चलो हो जाय इसी बहाने। मुझे भी तो तीन सौ की टोकरी मिली। कहने के साथ ही वह मदन की ठुड्डी खींच देती है और गाल सहला

है।'

मिलाओ हाथ।"

मिलाओ हाथ।" थप थप।

'पक्की।'

पक्की।"

फिर इस पक्की के बाद मदन ने अपने खास-खास दोस्तों से कहना शुरू कर दिया था। 21 दिसम्बर को हमारा मैरिज डे है। रात का खाना हमारे यहाँ खाना। हैड क्लर्क को भी। अधीक्षक महोदय को भी। अभियन्ता को कहने में सकुचाता रहा। उन्हें अधीक्षक से मालूम हुआ तो उन्होंने खुद ही बढ़कर कहा—'क्या भई मिस्टर मदनलाल हमें क्या घटिया आदमी समझ रखा है ? हम भी आयेंगे तुम्हारी मैरिज डे एनवसरी पर।'

जरूर साहब इससे बढ़कर हम दोनों के लिए क्या खुशी हो सकती है। कहने को बहुत मस्त सचमुच पुलकित हो उठा था, किन्तु बाद में उसे लगा था कि काम और खर्चा कुछ बढ़ जायगा। स्टैण्डर्ड कुछ और ऊँचा करना पड़ेगा।

शादी की वर्षगाँठ पर मदन और सुलक्षणा ने छुट्टी ली थी। 21 दिसम्बर को उनका बाहर घूमने का भी कार्यक्रम था।

मदन ने जीप आफिस लान में खड़ी कर दी। फिर साहब के कैबिन में बताने चला गया।

आह् सॉ सॉरी! इसीलिए तो हमने आज बाहर का कोई प्रोग्राम ही नहीं रखा था।' सुनकर मदन का मन कुछ अधिक उखड़ने लगा। उसने जवाब में मा काइंट आफ यू कहा और रात को आने की याद दिलाता हुआ बाहर निकल आया।

कुछ देर नजदीक के एक रेस्तराँ में बैठा चाय पीता रहा और सिगरेट फूँकता रहा। दिमाग की नसें जैसे रस्सी फटने लगीं। 21 दिसम्बर। 21 दिसम्बर। 21 दिसम्बर। पहला दूसरा, तीसरा और दसवाँ।

डिलिवरी। बीमारी। मुफलिसी। जाने क्या क्या। हर 21 दिसम्बर कुछ खराचे छोड़ता हुआ निकल जाता है। एक बार सास ननद के ताना से जख्मी, और रात का मेरे नाराज होने पर सुलक्षणा सिसकती हुई कह रही थी—'हमारे मन छोटे से घर के कोना और परम्परागत विचारों के कटघरे मे कैद हैं वरना सोचो तो क्या सिर्फ सौ दस वर्षो म जिन्म बासी हो जाते हैं, इनकी महक खत्म हो जाती है ?'

मदन ने बिल चुकाया और बहुद तेज कदमा से घर की तरफ बढ़ गया।

सुलक्षणा ने उसे देखते ही कहा—'बहुत देरी कर दी। बाजार से बहुत सामान लाना है।'

'हा मुझे याद है। लिस्ट बना लो।"

'पहले आधा आधा कप चाय पियें ?' सुलक्षणा ने पूछा।

'न,ी।" वह सोफे पर पसर गया। थोडी देर बाद सुलक्षणा एक मीठा सुगंधित पान तैयार कर लायी। मदन ने बिना प्रतिवाद किये पान ले लिया। पान लेते वक्त मुस्कराया भी। सुलक्षणा भी मुस्करायी किन्तु दोनो ही ओर की मुस्कराहट चिकनी मछली की तरह फिसलती हुई जम गँदले पानी म जा गिरी।

सुलक्षणा तुरन्त कमरे मे चली गयी। खिडकी न खोलकर टेबल लैम्प जलाया। एक लम्बी फेहरिस्त तैयार कर डाली। फिर अनावश्यक लम्बे डग भरती हुई मदन के पास पहुँची—'लो।'

मदन ने कपडे नही बदले थे। शायद वह आज के दिन इसी तरह बना ठना रहना चाहता था। उसने साइकिल पर चले टाँगने शुरू कर दिये।

'अब मूड बन गया हो तो चाय पीने आओ। खाना तो आकर ही खाना। तैयार रखूगी।"

'सवेरे सवेर ही तुमने इतना कुछ खिला दिया कि पेट फूल रहा है। मदन न टाई को कोट के बीचोबीच बठाते हुए कहा।

"सचमुच बहुत जँच रहे हो आज।' सुलक्षणा ने एक गहरी दृष्टि फेंकी और मुस्करा दी।

चापलूसी कर रही हो 'समझ गया। तुम्हें तो आज साडी दिलानी

थी। चला गया।

"तब तो बहुत देरी हो जायेगी। कितने काम पड़े हैं अभी। तीन बजे तो पिक्चर भी जाना है। साड़ी फिर कभी सही।"

"वाह! मैरिज डे आज है तो फिर कभी क्या?" मदन ने हँसकर उनकी बाँह खींची— "चलो सीधी तरह से।"

लगभग उन्हीं कपड़ों में सुलक्षणा चल पड़ी। नजदीक की एक दुकान से एक हरी प्रिंटेड साड़ी पसन्द की। वहीं से सुलक्षणा वापस हो ली और मदन आगे बाजार की तरफ निकल गया।

घर वापस पहुँचा तो दो बजकर चालीस मिनट हो गये थे। सुलक्षणा के बाल बिखरे रहे थे। हाथों में कुछ सब्जी लगी थी। देखकर मदन चौंक गया— "मैंने सोचा था नयी साड़ी पहने हुए तैयार मिलोगी।"

"बच्चों की-सी बातें करते हो। साड़ी में फाल लगाने बैठती या रात की पार्टी में कोई कमी छोड़कर आपसे डाँट खाने की तैयारी।"

"इस वक्त तो तुम्हीं डाँट रही हो। अब सिनेमा नहीं चलना?"

"तुम्हीं हो आओ। एक बार आपने बताया था न सिनेमा हाल के साथ एक दुकानदार है जो बहुत सस्ते अंडे रखता है। कुछ लोग मीट नहीं खाते। अंडे माँग लेते हैं। तब तक मैं चने साफ कर उबलने के लिए रखती हूँ। वेजिटेरियन नान वेजिटेरियन सभी का ध्यान रखना है। इतने लोगों को बुलाया है। नाक तो नहीं कटवानी।"

मदन अण्डे लेकर आया तो ऐसे ही दोनों ने कुछ खा पी लिया। फिर सुलक्षणा ने मदन को स्वीट डिश के लिए पिसी हुई गरी लाने को भेज दिया।

आठ यूँ ही बज गये। मदन बाजार के चक्कर लगाता रहा और सुलक्षणा सतर्कतापूर्वक पार्टी की व्यवस्था करती रही। बच्चे ज्यादा चंचल हो जाते तो अपनी खिजलाहट उन्हीं पर निकाल देती एक-दो चपतें जमाकर।

"हैलो मिस्टर मदनलाल, हैप्पी मैरिज डे..." भारी जूतों की आवाज के साथ अभियन्ता महोदय का जोशीला स्वर भी पूरे आँगन तक गूँज गया।

उनके हाथ म फूलो का गुलदस्ता था। गुलदस्ता मदन के हाथ में दने से पहन उसी जाश मे कसकर हाथ मिलाया। उनके पीछे ,चार-पाँच आर लोग थ—काग्रेच्युलशस स्वर उभरते चल गय।

फिर समूच घर म भागा-दौडी मच गयी। मदन उन्हे बैठा रहा था। सुलक्षणा और उसकी एक सहकर्मी अध्यापिका नीति, बच्चो द्वारा अन्दर पानी, सिगरेट, माचिस आदि भिजवा रही थीं। और लोग आत रहे। यही सिलसिला जाग बढता रहा।

चाय पानी सिगरेट से शुरू होकर खाना खान, पान चबाने, म्यूजिक की धुन पर पैर बजान और अंत मे कुछ लोगो द्वारा पग खनखनाने तक सारा कायक्रम बहुत बढिया गया।

सबको विदाई दी तो ग्यारह बज चुके थ। कोट को खूटी पर टाग कर मदन ने अगडाई ली। फिर एक गहरी साँस लेते हुए सुलक्षणा की तरफ बढ गया—"बधाई बहुत बहुत बधाई डार्लिंग।"

किस बात की बधाई दे रहे हो?' सुलक्षणा ने हाथ पोछते हुए कुछ सोचा।

तुम्हारी मेहरबानी से सब कुछ बहुत बढिया रहा। तुम्हारे खाने की तो एक स दूसरा बढ चढकर प्रशसा कर रहा था।'

अच्छा! मैं समझी शादी की वषगाठ की बधाई। चलो शुक्र है तुम्हारे मित्रगण सन्तुष्ट होकर गय।"

मदन को थोडी ऊब हुई। थका हुआ तो वह भी बहुत था। लेकिन इस कद्र उत्साहहीनता तो नहीं होनी चाहिए। तभी शायद पहली बार उसकी दृष्टि सुलक्षणा के आट सा्ी म सन हाया कपडा, बालो पर ठहर गयी।

'ओह तुमने खाना खाया कि नहीं?'

"कैसे खाती? अब तो भूख भी मारी गयी।'

'और बच्चो ने?

उन्हे नींद आ रही थी। थोडा थोडा खिलाकर सुला दिया। कहीं मेहमानो को कम पड जाता तो कितनी फजीहत होती! उसी वक्त नीति को कोई बुलाने आ गया तो जल्दी से उसे भी खिलाकर भेज दिया था।"

कहते कहते उसने लम्बी साँस खींची 'खैर अब मेरा मानसिक बोझ तो कम हुआ। आप कपड़े बदलकर आराम करो। मैं बतन माँज कर आती हूँ। रसोई भी साफ करनी है।"

'बाकी काम सुबह देख लेना।"

कल की छुट्टी थोड़े ही है। इस तरह सुबह पर छोड़कर सोयी तो सारी रात बेचैनी बनी रहेगी। अब तो अँगीठी पर गम पानी रखा हुआ है।'

ठहरो पहले खाना खा लो। जबदस्ती मदन ने उसे डेढ रोटी खिलायी।

फिर जल्दी से मदन लुंगी कुर्ता-स्वेटर पहन कर आ गया।

बहुत देर तक पति पत्नी मिलकर बतन माँजते रहे। रसोई साफ करते रहे। दूसरा सामान अपनी जगह पर जँचाते रहे।

एक से ऊपर का समय हो गया था।

मदन ने इधर उधर देखा और कुछ सोचते हुए बोला—'एक बार नयी साड़ी तो बाँध कर दिखा देती।'

सुलक्षणा तेजी से अलमारी की तरफ चली गयी जैसे एक और काम अभी बाकी रह गया हो।

साड़ी निकाल कर सुलक्षणा ने उसे ऐसे ही अपने बदन पर ओढ़ लिया। साथ ही चेहरे पर मुस्कान लाने की चेष्टा की जिसे देखकर मदन अन्दर तक थरथरा गया। एकाध मिनट में साड़ी सुलक्षणा के हाथों से फिसलती हुई फश पर फैल गयी। उसे बिना उठाये ही वह अपनी चारपाई पर निढाल हो जा गिरी।

इधर मदन भी पलंग पर जा लेटा। बीच में एक बार नींद खुली तो पत्नी को बुलाना चाहा पर साहस नहीं हुआ। उसकी आँखों के सामने सुलक्षणा की साड़ी गोलाकार रूप में घूमने लगी। ऊपर एक मुस्कान नाच रही थी।

सुबह बहुत देर तक दोनों पड़े मौन रहे।

बिखराव

हम दोनों धीरे धीरे कभी छाँव में तो कभी धूप में गुजरते पहाड़ी ढलान की तरफ बढ़े चले जा रहे थे। बिल्कुल अनजाना रास्ता, पगडंडी के सहारे-सहारे आसान लगने लगा था। जगह जगह फूलों ने रास्ते को बहुत खूबसूरत बना दिया था।

अपने-अपने कामों में जुटे नेपाली बच्चों और स्त्रियों के चेहरों पर भी फूलों जैसी खूबसूरती बिखरी हुई थी। उन्होंने हमें बताया था कि चौड़ी सड़क पर बायें तरफ मुड़ते ही रापती होटल दिखने लगेगा।

मामूली सी थकावट हमें होने लगी थी। लेकिन बस न मिलने की वजह से जितना ज्यादा सफर हमने तय किया था, उस हिसाब से यह बहुत कम थी। जगह जगह कहीं झरनों के पास तो कहीं पीले या गुलाबी फूलों के दरख्तों के नीचे हम सुस्ता लेते। 'रोपवेज' देखने के लिए थोड़ी देर रुक जाते और फिर आगे बढ़ने लगते।

आखिर हमें रापती होटल का शोख लाल रंग का बड़ा साइनबोर्ड दूर से दिखायी दिया और हमारी चाल आप से आप तेज हो गयी।

रापती होटल के मुख्य द्वार के सामने आकर हम लोग दो-तीन मिनट के लिए खड़े हो गये। शायद अपने कपड़ों की सलवटों और बालों के उलझाव का ध्यान आ जाने से बड़े होटल में एकाएक घुसने में होने लगा।

कोई भी आदमी होटल में आता जाता दिखायी नहीं दिया तो मै

धक्कर शीशे के बड़े दरवाजे को अन्दर धकेल दिया। अन्दर सूनापन और अँधेरा था। सब जगह खालीपन व्याप्त था। गौर से देखा तो बस एक विदेशी जोड़ा कोने के टेबल पर बिल्कुल खामोश मुद्रा में बैठा नजर आया।

बैरा हमारे निकट आकर हमें किसी टेबल के करीब ले जाने के लिए अगवानी करने लगा। हमने उससे सरदार गुरमुख सिंह के विषय में पूछा तो बोला, "नाम तो नहीं जानता, शायद आप नेपाली सरदार को पूछते हैं। ठहरिए।" उसने उँगली से माथे को छुआ और मैनेजर के केबिन में चला गया।

मैनेजर ने तुरन्त हमें अपने पास बुला लिया।

"क्या सरदार गुरमुख सिंह यहीं रहते हैं?" मैंने पूछा।

"यहाँ तो नहीं रहते। काश यहाँ रहते! उनसे बात करते हुए सब अपने गमों को भूल जाते हैं। बड़े रफुन मन—" मैनेजर जरा रुका, उत्तर की सही दिशा की ओर मोड़ा, "हाँ अक्सर यहाँ आते हैं। कुछ रोज से दिखायी नहीं दिये। जरूर बाहर गये होंगे।"

मैनेजर ने बात खत्म की तो सुमन सिंह का स्वर निराशा से ऊऊ में अटक गया कि अब क्या पूछें।

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद मैनेजर फिर बोला, "आप मि० मोहन थापा से पता लगा लें ना!"

हम दोनों मैनेजर की ओर देखने लगे— कौन मोहन थापा?

अब की मैनेजर ने हमें अधिक ध्यान से देखा— "मोहन थापा को नहीं जानते! ओह आप इंडिया से आये हैं!" फिर एकाएक सुमन सिंह को जैसे पहचान लिया हो, "तो आप उनके भाई हैं। शक्ल मिलती है गुरमुख सिंह से। उसने आपको लिखा नहीं? मोहन थापा यहाँ का बहुत बड़ा नाम है और वह गुरमुख सिंह के गहरे दोस्त हैं।"

"उन्होंने तो हमें बारह सालों से कोई चिट्ठी नहीं डाली।" शीघ्रता से इस वाक्य को समाप्त कर सुमन ने पूछा—"मि० मोहन थापा कहाँ मिल सकते हैं?"

"गवर्नमेण्ट हाउस, नहीं शायद नये पर बँगले पहुँच चुके हों। बाईं डेढ़ फर्लांग चलने पर एक हरे गेट पर आपको उनकी नेम प्लेट दिख



को छू रही थी।

हम बँगले के फाटक से सट कर खड़े हो गये। दूर झाड़ियों की आड़ में माली काम करता हुआ दिखायी दिया। हमारे बार-बार फाटक को हिलाने और आवाज पैदा करने पर वह हमारे पास आया।

उसके निकट पहुँचते ही सुमन बड़ी बेताबी से पूछ बैठा, 'गुरमुख सिंह हैं ?

माली ठीक से समझने के लिए हमारे और पास आ गया। मैंने कहा, साहब अन्दर हों तो कहना हम मिलना चाहते हैं।'

यह वाक्य मुझे तीन बार दुहराना पड़ा तब कहीं जाकर वह बूढ़ा नेपाली हमारी बात समझा। वह अन्दर चला गया।

थोड़ी देर बाद माली हमें साथ ले गया और अतिथि कक्ष में बैठा दिया।

जल्दी ही गोरे लम्बे कद के मि० मोहन थापा गर्म सूट पहने टाई लगाये नज़र आये। हम दोनों खड़े हो गये। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया कि अभी यूनिवर्सिटी में रिसर्च कर रहा हूँ और बताया—"यह सुमन सिंह हैं मेरे सहपाठी और बचपन के दोस्त। गुरमुख सिंह जी के भाई हैं। उन्हीं के विषय में जानने के लिए आपको कष्ट दिया है।'

'वाह ! उन्होंने तपाक से सुमन की पीठ थपथपाते हुए प्रसन्नता व्यक्त की ' वह तो दिन रात यहीं पड़ा रहता है। कहीं भी पड़ा रह सकता है। मस्त आदमी है। चार पाँच रोज से कलकत्ता गया है। देखो कल आ जाय !

कल जरूर आ जायगा ? सुमन का स्वर बुझा-बुझा-सा निकला।

क्या नहीं ! कल न सही परसों या उससे अगले रोज़।' उन्होंने ठहाका लगाया चिन्ता क्या करते हो ! तब तक हमारे साथ रहो। वह तो मस्त मलंग आदमी है। बड़ी मुश्किल से निकालता है अब की। बस तो हर टेण्डर उसी का होता है अगर वह एक्सेप्ट करे। करता बहुत कम है। एक ही टूर में चार-पाँच हज़ार बन जाते हैं। कहता है क्या करना है अपनी जान को। पैसा आता है तो यारों-दोस्तों में बैठ कर बहा देता है।

'हां सुना है। बहुत बड़े दिल के इंसान हैं।' सुमन ने पगड़ी को ठीक करते हुए कहा।

इंसान या शेर? शेर कहो शेर, इंसान भी शेर भी। हर किसी के पीछे जा लड़ा दन वाला आदमी है। उसके सामने किसी के साथ ज्यादती हो जाए—वह बरदाश्त नहीं करता। जान लड़ा देता है। जैसे अपना ही कोई बदला चुका रहा हो।

फिर थापा साहब चुप हुए तो गुरमुख सिंह के बड़े चमत्कार जैसे लगने वाले किस्से सुनाते चले गये। यह भी दुहराते रहे कि वह स्पष्ट तो कुछ नहीं बताता लेकिन लगता है उसके दिल का कोई मुलायम हिस्सा कहीं से जख्मी है।

हमारे सामने उन्होंने खाने-पीने का खूब सामान लगवा दिया। बीच-बीच में हरदर कहते— भई खाओ, कुछ खा नहीं रहे, खाओ ना। गुरमुख सिंह बैठा हो तो इतना नाश्ता हमारे साथ गायब हो जाता।" उनकी खुशमिजाजी का परिचय फिर उनके ठहाके से लगा।

उनके बहुत अनुरोध करने पर, जब हम वहीं ठहरने को नहीं माने तो वे हमें रापती होटल तक छोड़ने चल पड़े। कहा, 'यहीं यहां का अच्छा होटल है।'

रास्ते में वह हमें फिर से गुरमुख सिंह की बातें बताते रहे—"एक बार उसे पीलिया हो गया था। करीब ग्यारह दिन अस्पताल में रहना पड़ा। हर वक्त मुलाकातियों का तांता लगा रहता। जो स्टाफ उसे अच्छी तरह नहीं जानता था, आश्चर्य प्रकट करता—सरदार है। परदेश में इतने मिलने वाले टपके रहते हैं—गये रात तक। इस पर कई लोग हँसते, पंजाबी नहीं नेपाली सरदार है।"

"लेकिन हमें तो पिछले बारह सालों से एक भी लैटर नहीं लिखा।" सुमन के स्वर से उदासी झलक आयी।

'सरप्राइज! कहीं पता में तो गड़बड़ नहीं हो जाती?"

"नहीं, कोई तीन महीने पहले दिल्ली आये थे, और तो और अपनी सगी लड़की से भी मिल कर नहीं आये। अपने एक दोस्त के यहां ठहरे। उसी ने हमें बताया, नेपाल में है। ठीक पता ठिकाना बता कर नहीं गया।

पापुलर आदमी है। याशिश करो ना मिल जायेगा। इधर आकर हम वगैनी मे पता करन करात रक्सौल पहुँच। फिर काठमाण्डू इनक वा पता चलन पर यहाँ हिल्डा आ गय। शुक्र है।'

'फिक्र न करो बान्धाओ,' थापा साहब ने पजाबी लहजे म कहा, 'आत ही उस आपकी अदालत म पश कर उससे जवाब तलबी करूँगा— बोल यह नौजवान ठीक कहते ह ?'

नहीं-नहीं' मुमन कुछ सहम कर बोला—'सुना है बहुत सेंसिटिव हैं। जल्दी बुरा मान जाते हैं।'

दोस्ता की बात का कभी बुरा नही मानता, वह दिता न तसी फिक्र ई ना करो।'

हम सब हँसन लगे। रापती होटल आ गया था। हम एक कमरे म ठहराकर मैनजर म कुछ बातचीत कर थापा साहब चले गय।

दूसरे दिन सुबह से दुपहर तक थापा साहब क बँगले के तीन चक्कर लगा आय। शाम का भी हो आय। गुरमुख सिंह नही आये।

उमस अगले दिन और उसस अगले दिना हमारी इतजार का सिल सिला लम्बा खिचन लगा। मैं कहता—'अब तो थक गय है। चलो लौट चलें।' सुमन कहता—'हरगिज नही। अब बिना मिले कैसे जा सकते हैं ?' थापा साहब कहत—"कल जरूर आ जायेगा।'

आसपास क कुछ लोग और दुकानदार भी हम जानने लगे थे कि हम किसलिए यहाँ रुके हुए हैं। उनकी प्रश्नसूचक दृष्टि और थापा साहब क यहाँ के खाली चक्करा से हम बदम हा चले थे। और साथ ही शम भी महसूस होन लगी थी। थापा साहब जबरदस्ती कुछ देर बैठा लेत। नाश्ता करात। कभी खाना खिलाये बिना न जान देत।

कहते— क्या निराश होन हो—कल आ जायगा। यारबाश आदमी ठहरा। यारा न रास्त म अटका लिया होगा। बस अब आना ही होगा। यह बात भी पक्की है कि वम स उतरत ही एक बार सीधा इधर आयगा।

एक दिन सुबह मोहन थापा के यहाँ चक्कर लगान के बाद हम सारा दुपहरी पड़े सात रहे थ। शाम का उठा ही फिर वही शब्द सुन आय थ

ओह् नाट यट। इसके बाद बस अड्डे से होते हुए हम एक ऊबड़-खाबड़ सुनसान सड़क पर दूर तक निकल गये थे। जब लौटे तो अँधेरा हो गया था। एक आदमी हमें देख कर ठिठक कर रुक गया। हम उसे नहीं पहचानते थे। बोला— मिल गये आपके भाई साहब ? मैंने उन्हें कोई घंटा भर पहले दूर से देखा था।"

'अच्छा !" कहते हुए हम तुरन्त तेज गति से मोहन थापा के बँगले की ओर चलने लगे थे।

दरख्तों और झाड़ियों की ओट से हमने उन्हें बरामदे में दो उंचे मूढ़ों पर बैठे हुए देखा। बीच में तिपाई थी, उस पर हल्की रोशनी से टेबल लैम्प जल रहा था। साथ में एक बोतल और दो गिलास भी रखे थे।

एकाएक सुमन ने मेरा हाथ पकड़कर रोकते हुए कहा—'रुको हम उन्हें सरप्राइज देंगे।

हम धीरे धीरे कुछ और आगे पहुँच गये। उन्होंने हमें नहीं देखा। वे शायद किसी दूसरी दुनिया में पहुँच कर इसी दुनिया की बातें कर रहे थे।

'समझ गये ना ! उससे कहना, दोस्त की तरह मिले।'

"हूँ।"

'उस बेचारे का भी क्या कसूर ! उस वक्त मुश्किल से आठ-दस साल का रहा होगा। उसे क्या पता बड़े भाइयों ने किस तरह झूठे दस्तखत बनाकर सारी जायदाद हड़प ली ?'

हूँ।

मैंने भी कहा गुरमुख सिंह, कोई बात नहीं। कौन-सी साथ ले जाने वाली चीज है, मारो गोली।'

'हूँ।"

'पता चला मेरी गैरहाजरी में जब जंग में एक्शन कर रहा था, मेरी घरवाली का इलाज नहीं कराया। बेचारी दम तोड़ गयी। मैंने कहा —ओ गुरमुख सिंह, छोड़ दे सब कुछ। भाग चल, अब नहीं सहा जाता।"

'हूँ।"

आए, अभी तुमने मेरी लड़की की बात चलाई थी ना। लोगों के

कहने म उसने भी मान लिया कि उसका पक्की उम्र का बाप दूसरी औरता क पीछे भागता है। गुरमुख सिंह यह सारे रिश्ते बकार हैं। इनसे ही दुख उपजता है। बाहर का कोई आदमी ऐसा कह दे, कह दे। धोखा द जाये, द जाय। चला स। क्या लगता था तरा ? दे गया धोखा। कर गया फरब। क्या ल गया ? जितने दिन निभ गये सो भल। मगर मोहन सिंह! जब ऐसी हरकतें खून के रिश्ते करते ह ता सारे बदन स खून रिसने लगता है। समझे कि नहीं ? मेरी बात समझ रह हा कि नहीं ?'

हूँ हूँ !

हा अभी-अभी ख्याल आ रहा है उसके हिस्से के कोई दो ढाई हजार मेरी तरफ निकलते हैं। कहीं यह प्यार के रिश्ते का खोल चढाये सिर्फ पैसा वसूल करने ही ता नहीं आया। अगर ऐसा है तो उसे भगा देना।

आह !'

नहीं-नहीं भगाना मत, खा खाँ अरे छाती म कुछ दर्द-सा उठने लगा है। उसस कहना मिल ल, सिर्फ एक बार दोस्त की तरह मिल ले और फिर भूल जाय कि गुरमुख सिंह स कभी मिला था।" खा खाँ खाँसत-खासत हाथ गिलास को जा लगा। झटका लगा ता गिलास छिटक गया। टूट कर दूर तक बिखर गया।

'हूँ ! हूँ ! ठहरो। बुलाता हूँ। माली दादा रापती होटल जाओ।'

मैं सुमन का आगे धकेल रहा था। मगर वह जस वहीं जम गया था।

तपती किरणों का फंदा

ओह कितनी कितनी हसरत लेकर हम यहां आये थे, लेकिन सारी गलियां पूरी तरह से खामोश थी।

इससे पहले जब भी मैं अपने बचपन के दोस्त सुखविंदर के घर आता, मुझे यों लगता, जैसे सुखविंदर का घर ही नही पूरी गली ही मेरा गर्मजोशी से इस्तकबाल करती है। लगभग सारी गली के बड़े और बच्चे तक मुझे पहचानने लग गये थे और गली में घुसते ही उत्साह से भर उठते—आ गये जी! सुखविंदर अभी-अभी गया है। सुखविंदर की घरवाली मायके से लौट आयी है। कई बच्चे मेरे पहुंचने से पहले ही सुखविंदर का दरवाजा खटखटा देते। आपके यहीं मित्र आये है।

इस बार गली में कोई नही मिला। शायद सब अपने-अपने घरों में दुबके थे। हम सुखविंदर के मकान तक पहुंचे तो वहां एक वजनी ताला झूल रहा था।

भारी कदमों से मैं अपने मित्र के साथ उधर से लौट आया तो पाया सिर्फ गलियां ही क्यों, सड़कों, पार्कों, यहां तक कि सिनेमाघर के नजदीक भी प्रतिक्षण मन को बेतरह क्षुब्ध डालने वाली अनचाही शांति पसरी पड़ी थी।

सुखविंदर के मकान वाली गली जहां खत्म होती है उसके दायी ओर कुछ कदम रखने के बाद एक निहायत आलीशान पुराने डिजाइन का सिनेमा पर बड़े रौब से सर ऊंचा उठाये अपने आसपास, बच्चों की तरह

मँडराते लोगों को निहारता रहता है किन्तु आज वह उदास था। आसपास कोई नहीं था। सिनेमा घर की हदें पार करने पर एक छोटा, साफ-सुथरा पार्क आ जाता है। हम वहीं चले गये। पार्क बिलकुल खाली था।

आज भी मैं रात भर का थका हुआ था। इधर की सारी स्थितियों से हताश निराश हो गया था अतः एक सुरक्षित सी झाड़ी की आड़ लेकर सो गया।

× × ×

सपने देखना अनादि काल से मनुष्य की नियति रही है और उनकी तरह-तरह से समीक्षा भी की जाती रही है, लेकिन दिन में देखे गये, स्वप्नों की प्रामाणिकता पर हमारे पूर्वज ज्योतिषी और शायद मनोवैज्ञानिक भी सदा संदेह चिह्न लगाते रहे हैं। किन्तु क्या उस व्यक्ति द्वारा, दिन में देखे गये स्वप्नों के साथ न्याय नहीं किया जायेगा, जो हफ्ता रात भर ड्यूटी बजाता हो और जिसके लिए दिन ही रात का रोल अदा करता है। इस तरह कोई भी समझदार आदमी मेहनतकशों के स्वप्नों को झुठलाने का दुस्साहस नहीं करेगा।

सपने में मेरे चेहरे का आधा हिस्सा बार-बार गायब हो जाता था जिसे पकड़ने के यत्न में मैं गलियों में भाग रहा था। लेकिन हर गली अचानक ही खत्म हो जाती थी।

अचानक बहुत ऊँचा शोर सुनाई देता था। मगर कोई भी आदमी सामने नजर नहीं आता था। लगता जैसे हर शख्स सामने आने से कतराता है या शरमा रहा है या तो अपनी ओछी हरकतों के कारण या फिर अपने अधूरे कपड़ों के कारण। धुआँ ही धुआँ। ऊपर-नीचे। दाएँ-बाएँ। समूचा वातावरण धुंधला गया था। दम घुटने लगा था। आग नहीं थी लेकिन हर शै धीरे धीरे अन्दर ही अन्दर झुलस रही थी। कुछ सड़न की गंध पैदा होती जरूर थी किन्तु आँधी उसे उड़ा ले जाती थी।

थोड़े-थोड़े वक्फे बाद चन्द आदमी, आधे-अधूरे चेहरों के साथ सिर उठाते। देखने के लिए कि क्या हो रहा है और फिर एक-दूसरे को खरोंचते हुए कहीं गायब हो जाते।

जैसा कि होना चाहिए और होता है, मिसाल के तौर पर आटे में

पानी डालने से आटा गिलगिला हो जाता है। चकले पर रोटी बिलती है और तवे पर डालते ही पकने लगती है। अब मान लीजिए पानी डालने पर आटा गीला न हो। आग भी रोटी को पकाने से इन्कार कर दे—तो ? ऐसा ही कुछ हो रहा था। बार-बार। हर तरफ। उस वक्त आदमी कितना बेबस हो उठता है। मुझे लगता, कुछ लोग मिलकर मुझे सता रहे हैं और मुझे जो कोई भी मिल जाय उससे मुझे बदला लेना है।

ऐसे विचित्र पर्यावरण में मैं घण्टों चलता रहा था। बार-बार हर मोड़ पर अनुमान के विपरीत ही कुछ घट जाता। मेरे रहे-सहे साहस ने जब पूरी तरह दम तोड़ दिया तब मैं बेतहाशा भागने लगा था ताकि ठीक रास्ते पर आ लगूं। लगता कि बस अब चन्द मिनटों बाद ठीक जगह पहुँच जाऊँगा। लेकिन हर बार अप्रत्याशित रूप से गली समाप्त हो जाती और सारे रास्ते अवरुद्ध हो जाते। तब मैं दूसरी दिशा में भागने लगा। एक तरफ मुड़कर देखा तो सामने भारी भरकम किले की ऊँची पथरीली दीवार थी। मैं उस दीवार पर सिर मारने लगा। कई दफा सिर पटकने पर भी एक बूंद तक खून नहीं निकला तो मेरी कँपकँपी छूट गयी कि मेरा खून तमाम हो चुका है। हाँ, माथे पर दर्द का अहसास हुआ। आँखें खोलीं तो एक भारी भरकम काला जूता माथे से सटा हुआ था।

× × ×

एक छोटे जंक्शन स्टेशन पर मैं कब से प्वाइंटसमैन लगा हुआ हूँ जहाँ सारी-सारी रात गाड़ियों की आमदोरफ्त लगी रहती है। सवारी गाड़ियाँ खत्म होती हैं तो मालगाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं और फिर उनकी शंटिंग। सुबह होते-होते फिर सवारी गाड़ियाँ। सारी-सारी रात मैं भी गाड़ियों की तरह भागता रहता हूँ। दिन में हाँफता हुआ अपने एक कमरे वाले क्वार्टर में दाखिल होता हूँ और अपना चरमराता जिस्म चारपाई पर डाल देता हूँ फिर कुछ ऐसे ही ऊलजलूल सपने शुरू हो जाते हैं।

× × ×

पिछले दो महीनों से मेरा एक दोस्त मुझे इस महानगर में साथ चलने को मजबूर कर रहा था। उसकी बहन की शादी थी। कुछ गहने और साड़ियाँ आदि खरीदनी थीं। उसे पता था कि सुखविंदर मेरा गहरा दोस्त था और

मँडराते लोगो को निहारता रहता है किन्तु आज वह उदास था। आसपास कोई नही था। सिनमा घर की हदें पार करने पर एक छोटा साफ-सुथरा पार्क आ जाता है। हम वहीं चल गय। पार्क बिलकुल खाली था।

आज भी मैं रात भर का थका हुआ था। इधर की सारी स्थितियो से हताश निराश हो गया था अत एक सुरक्षित सी झाडी की ओट लेकर सो गया।

× × ×

सपने देखना अनादि काल से मनुष्य की नियति रही है और उनकी तरह-तरह स समीक्षा भी की जाती रही है, लेकिन दिन म देखे गय, स्वप्नो की प्रामाणिकता पर हमारे पूवज ज्योतिषी और शायद मनोवैज्ञानिक भी सदा सन्देह चिह्न लगाते रहे है। किन्तु क्या उस व्यक्ति द्वारा, दिन म देखे गये स्वप्नो के साथ न्याय नही किया जायगा जो हफ्ता रात भर ड्यूटी बजाता हो और जिसके लिए दिन ही रात का रोल अदा करता है। इस तरह कोई भी समझदार आदमी मेहनतकशो के स्वप्नो को झुठलाने का दुस्साहस नही करेगा।

सपन मे मेरे चेहरे का आधा हिस्सा बार-बार गायब हो जाता था जिसे पकडने के यत्न म मैं गलियो मे भाग रहा था। लेकिन हर गली अचानक ही खत्म हो जाती थी।

अचानक बहुत ऊँचा शोर सुनाई देता था। मगर कोई भी आदमी सामने नजर नही आता था। लगता जसे हर शख्स सामने आने स कतराता है या शरमा रहा है या तो अपनी ओछी हरकतो के कारण या फिर अपने अधूरे कपडो के कारण। धुआ ही धुआ। ऊपर-नीचे। दाएँ-बाएँ। समूचा वातावरण धुधला गया था। दम घुटने लगा था। आग नही थी लेकिन हर श धीरे धीरे अन्दर ही अन्दर झुलस रही थी। कुछ सडन की गध पैदा होती जरूर थी, किन्तु आधी उसे उडा ले जाती थी।

थोडे-थोडे वक्फे बाद चन्द आदमी आधे-अधूरे चेहरो के साथ सिर उठाते। देखने के लिए कि क्या हो रहा है और फिर एक-दूसरे को खरोचते हुए कहीं गायब हो जाते।

जसा कि होना चाहिए और होता है मिसाल के तौर पर आटे म

पानी डालने से, आटा गिलगिला हो जाता है। बेलने पर रोटी बिलती है और तवे पर डालते ही पकने लगती है। अब मान लीजिए पानी डालने पर आटा गीला न हो। आग भी रोटी को पकाने से इंकार कर दे—तो? ऐसा ही कुछ हो रहा था। बार-बार। हर तरफ। उस वक्त आदमी कितना बेबस हो उठता है। मुझे लगता, कुछ लोग मिलकर मुझे सता रहे हैं और मुझे जो कोई भी मिल जाय उससे मुझे बदला लेना है।

एस विचित्र पर्यावरण में मैं घण्टा चलता रहा था। बार-बार हर मोड़ पर अनुमान के विपरीत ही कुछ घट जाता। मेरे रहे-सहे साहस ने जब पूरी तरह दम तोड़ दिया तब मैं बेतहाशा भागने लगा था ताकि ठीक रास्ते पर आ लगूं। लगता कि बस अब चन्द मिनटों बाद ठीक जगह पहुँच जाऊँगा। लेकिन हर बार अप्रत्याशित रूप से गली समाप्त हो जाती और सारे रास्ते अवरुद्ध हो जाते। तब मैं दूसरी दिशा में भागने लगा। एक तरफ मुड़कर देखा तो सामने भारी भरकम किले की ऊँची पथरीली दीवार थी। मैं उस दीवार पर सिर मारने लगा। कई दफा सिर पटकने पर भी एक बूंद तक खून नहीं निकला तो मेरी कँपकँपी छूट गयी कि मेरा खून तमाम हो चुका है। हाँ, माथे पर दर्द का अहसास हुआ। आँखें खोलीं तो एक भारी भरकम काला जूता माथे से सटा हुआ था।

× × ×

एक छोटे जंक्शन स्टेशन पर मैं कब से प्वाइंटसमैन लगा हुआ हूँ, जहाँ सारी-सारी रात गाड़ियों की आमदोरफ्त लगी रहती है। सवारी गाड़ियाँ खत्म होती हैं तो मालगाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं और फिर उनकी शंटिंग। सुबह होते होते फिर सवारी गाड़ियाँ। सारी सारी रात मैं भी गाड़ियों की तरह भागता रहता हूँ। दिन में हाँफता हुआ अपने एक कमरे वाले क्वार्टर में दाखिल होता हूँ और अपना चरमराता जिस्म चारपाई पर डाल देता हूँ फिर कुछ ऐसे ही ऊलजलूल सपने शुरू हो जाते हैं।

× × ×

पिछले दो महीनों से मेरा एक दोस्त मुझे इस महानगर में साथ चलने को मजबूर कर रहा था। उसकी बहन की शादी थी। कुछ गहने और साड़ियाँ आदि खरीदनी थीं। उसे पता था कि सुखविंदर मेरा गहरा दोस्त था और

वह यह चीजें अपनी और जायज कीमत पर दिलवा सकता था। मेरे लिए मुश्किल यही थी कि मुझे किसी सूरत से भी एक रोज की छुट्टी नहीं मिल पा रही थी। मैं उसे तसल्ली देता था कि किसी दिन भी चल पड़ेंगे। एक ही दिन का तो काम है। अब कल ही उसने आकर कहा था—तुमने मुझे मरवा दिया। परसों ही बहन की शादी है और तुम्हारे भरोसे कुछ भी नहीं कर पाया। अबकी भी मैंने उसे तसल्ली दी—तो क्या हुआ। आज रात चलेंगे। परसों सवेरे यहाँ वापस। कल मेरी रात दो बजे तक ड्यूटी थी। किसी तरह दूसरे प्वाइंटसमैन और स्टेशन मास्टर से मोहलत मांगकर (बिना छुट्टी) रात एक वाली गाड़ी में दोस्त का साथ लेकर बैठ गया था कि दिन भर में काम निपटाकर महानगर से रात आठ बजे चल पड़ूंगा और अपने स्टेशन पर पहुँचकर मुस्तैदी से फिर ड्यूटी पर तैनात हो जाऊँगा।

गाड़ी में बेहद भीड़ थी। प्राय: खड़े खड़े हमने सफर तय किया था।

सुखविंदर का घर स्टेशन के बिलकुल पास पड़ता है। सदा की भाँति यही कार्यक्रम था कि पहले सुखविंदर के घर थोड़ा नाश्ता और आराम करेंगे। फिर उसे भी बाजार ले चलूंगा।

मगर यहां तो महानगर को शायद साँप सूंघ गया था।

जिस वक्त मैं गाड़ी की ओट में नाइट ड्यूटी और गाड़ी की थकावट मिटाने के चक्कर में किन्हीं दूसरे चक्कर में फँसा हुआ था उस समय मेरा मित्र यहीं आसपास मँडरा रहा था कि एक बड़ा साँप उसे अपने साथ लिवा ले गया था। उसे अपने साथियों से तरह तरह की यातनाएँ दिलवाता रहा था। अंत में उसने जेब पर डंक मार उसे आजाद कर दिया था।

इधर मेरे माथे के साथ जो काला जूता सटा था मेरे सारे पैसे उसने पतलून में धरवा लिए गए थे।

× × ×

मेरे पार्क से बाहर आते ही मेरा मित्र मुझे मिल गया था। अब इस महानगर में और रुकने का कोई औचित्य हमारे सम्मुख नहीं रह गया था। रात आठ बजे गाड़ी रवाना होती थी। हम चार के करीब ही स्टेशन की

और रेंगने लगे थे। हमारे साथ सड़क भी रेंगने लगी थी और किले की लम्बी दीवार भी। दीवार से सटा हुआ कोई बड़ा पेड़ था। उसके छोटे-छोटे पत्ते पूरी तरह सूखे हुए थे। पेड़ के नीचे एक लड़का खड़ा था। उसके कंधे पर एक बहुत बड़ा मैला सा थैला झूल रहा था। एक हाथ में त्रिशूल जैसी कोई लम्बी तार थी। दूसरे हाथ में सुनहरी जंजीर थी। सामने एक रंग बिरंगी पिटारी पड़ी थी।

'बाजीगर' यह शब्द हमारे अन्दर फूटा था। मगर मुंह को फाड़कर बाहर नहीं निकल सका था। जिधर भी मुंह उठाते घुमाते एक ही इबारत पढ़ने को मिलती—दरवाजों खिड़कियों पर, दीवारों पर, साइन बोर्डों पर—'खामोशी तोड़ना मना है।

मगर लड़का हमें देखकर एक फीकी मुस्कान बिखेरता हमारी ओर बढ़ आया। उसे देखकर मुझे थोड़ा बल मिला—"क्या तमाशा दिखाते हो?" कई कई घण्टों की चुप्पी के बाद मेरे मुंह से निकलने वाला यही पहला वाक्य था। इस स्थिति में जैसा स्वर होना चाहिए, वैसा ही था।

वह उदास मुस्कान में हामी भरते हुए थोड़ा झुका। एड़ियाँ घसीटता हुआ जरा पीछे को खिसका, अपने हाथ की तार को जमीन पर बिछाकर रंगीन पिटारी की तरफ बढ़ने लगा—'क्या, क्या तमाशा देखना पसन्द करेंगे?'

मैंने अपनी जेबों में हाथ डालते हुए अपने दोस्त की सलाह जानने के लिए उसकी ओर घबराई हुई नजर फेंकी।

दोस्त ने भी अपनी जेबों में से खाली हाथ निकालते हुए 'न' का संकेत कर दिया।

लड़का निराश होकर और स्पष्ट रूप से मुस्कराने लगा। हम लोग चलने के लिए जरा हिले। इस वक्त मेरे मस्तिष्क में एक ही बात घूम रही थी कि बिना टिकट यात्रा करने के लिए टी० टी० ई० के सामने गिड़गिड़ाना पड़ेगा। यह बताते हुए कि हम लुट चुके हैं और मैं क्लब में काम करता हूँ। यह सब मेरे स्वाभिमान के एकदम प्रतिकूल था।

इतने में लड़के ने मेरा हाथ थाम लिया—'देख लीजिए ना तमाशा। कोई ज्यादा पैसे नहीं लेंगे।' वह विचित्र से स्वर में फुसफुसा रहा

था। शायद उसके यह वाल उसकी जगह जगह से फटी कमीज के हर भाग से निकल रह थ।

हम क्या उत्तर देत ! हमारे पास था ही क्या ! न शब्द और न पैसे।

हमारे चेहरा पर यथावत भाव देखकर उसने जोडा—'बेशक अगर आप चाहे तो बिलकुल कुछ भी म दीजिए। मगर तमाशा जरूर देखिए। सवेरे स एक भी आदमी ने तमाशा नही देखा। अब शायद आपको देखकर आ जायें। सोचिए ना। मेरा वक्त कैसे कटा होगा। या मेरी रात कस कटेगी।

मेरी जबान कुछ कुछ खुलन लगी।

'कब से इस शहर म हो ?

'कोई आठ-दस साल स।'

'क्या यही सब करत हो हर रोज ? '

'पिछले आठ दस साला से यही सब।"

'बहुत रंगीन खेल दिखाता हूँ।'

आज शहर बन्द क्या है ?"

'सुना है बडे आदमियो मे टक्कर हो गयी है।

'कैसी टक्कर ?

उन्होने अपने अपन आदमियो के गुट बना लिये हैं। और रेडियो वाले कह रह हैं दो गुटा म झगडा हो गया है।

'दो गुट क्या लडत है ?

मैं क्या जानू ! आप ही बताइए ना !" उसका भोलापन बदसूरती की हद तक पहुँच गया कुछ लोग कहत हैं य बडे-बडे लोग अपनी दुनिया रंगीन करने के चक्कर म बाजारो की रौनक छीन लेत ह। और हमारी रोटी '

हूँ मैंने बीच म टोका क्या कल बाजार खुलेंगे ?

कह नही सकता। आप विश्वास करेंगे ऐसे दिन मुझे सिपाही के डण्डे में भी डरावने लगन हैं। सवेर गोली चली थी। कुछ आदमी मारे गये। बाकी सब अभी तक साथ पडे हैं।

कुछ लम्हो तक मौसम के मुताबिक हममे बेजारी समाती चली गई।

"अच्छा तो तमाशा शुरू करूँ" वह फिर से मुस्कराने के यत्न से अधिक कुरूप हो उठा। थैले में से एक सफेद धुला हुई टोपी निकालकर पहन ली। फिर अपनी पिटारी की ओर बढा।

मैंने आँख से अपने दोस्त को इशारा किया। शायद वह इसके लिए पहले से तैयार खडा था। पलक झपकते ही वह लडके के हाथो पर उछलने लगा। मैं भी आगे बढकर उसकी गरदन को पैरो से रौदने लगा पिच्च-पिच्च खून के कुछ धब्बे उडे और हमारे कपडो पर छा गये। कुछ मिनटो मे लडका जमीन पर लुढक गया। थैले और पिटारी मे से हम कुछ खास नहीं मिला। सुनहरी जजीर को घुमाते हुए हम आगे बढ गये। कराहती हुई आवाज ने हमारा पीछा किया तमाशा तो देख जाते। उसी वक्त चार सिपाइ हमसे कतराते हुए निकल गये। लडके की आवाज घूमती हुई सुनहरी जजीर के साथ चमक उठी—देखो तमाशा।

हम तेजी से भागने लगे। एक बडे नाले के किनारे किनारे। उसमे से सूरज बार-बार हमारे मुह पर झपट्टा मार देता। बिल्डिगें और पेड उलट होकर विपरीत दिशाओ मे भागे जा रहे थे—देखिए, तमाशा शुरू हो रहा है। कुछ हमशक्ल लोग खून से लथपथ नजर आये। हम गले लगाते हुए आगे निकल गये—देखिए साहबान, तमाशा शुरू हो चुका है।

सामने हैंड पम्प नजर आया तो राहत मिली। हमारे हलक दो बूद पानी को तरस गये थे। परन्तु पानी का रग लाल था। इससे हमारे मुह भी लाल हो उठे—देखिए तमाशा।

जसे-तैसे लुढकते हुए स्टेशन पहुँचे। पता चला आज गाडी नही जाएगी। कुछ समाज विरोधी तत्त्वो ने रेल लाइनो के साथ खिलवाड किया है।

'जाइए यहीं मेहरबान और इतमीनान से तमाशा देखिये।'

'मेरी नौकरी का क्या होगा?'

'मेरी बहन की शादी का क्या बनेगा? माँ कहेगी—अभागा! सारे पैसो से शहर मे मुह काला कर आया है।"

हम बस अड्डे चले गये। बस चलने वाली थी। भीड़ थी लेकिन हमारी तरफ देखकर लोग घबराकर इधर-उधर छिटक गये। हम मजे में बैठ गये। कण्डक्टर ने टिकट नहीं पूछा।

घर आकर पत्नी को सारा माजरा कह सुनाया तो वह राम राम कहती हुई कान पकड़ने लगी— आपको कैसे कैसे सपने आते हैं!"

अपना-अपना पक्ष

एक नो तीन अब अधिक उत्साह में स्वेटर के घर बुनती हुई उँगलियों को तेजी से दौडाने लगी थी। फंदे पर फंदा उठाते हुए लग रहा था जैसे किले पर किला फतह किय जा रही हूँ।

कोई दर्शनीय मंजिल निकट आने लगती है तो मनुष्य बरबस उद्वेलित हो उठता है। उत्सुकता उत्कंठा दुगने वेग से उसे उडाने लगती है। अत्यधिक थकावट के बावजूद उसकी गति तीव्रतर हो उठती है।

सुबह से नाश्ता नहीं किया था। नहाई भी नहीं थी। बस उठते ही स्वेटर बुनने बैठ गयी थी। कालेज भी नहीं गयी थी। सब घर वालो ने सुझाया था कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। नई-नई लेक्चररशिप मिली है। शुरू से छुट्टी लेने का बुरा प्रभाव पडता है। किन्तु एक अदम्य उत्साह था। आत्मविश्वास की शहनाई धुन जैसे मेरे अन्तर में बज रही थी, जिसने मुझे बाहरी जगत से काट ही दिया था।

प्रतियोगिता में स्वेटर भेजने की तिथि एकदम निकट नहीं थी दो-चार दिन की और देरी हो जाती तो कोई फर्क नहीं पडता किन्तु अपने द्वारा निर्मित मूर्ति को शीघ्र से शीघ्र देख पाने की लालसा बहुत ही विचित्र होती है। कुछ दिन अपने सामने रखने छूने के बाद ही उसे विदाई देने की युक्ति तर्कसंगत ही थी।

थोडी-थोडी देर में अधूरे स्वेटर को ही अपने कंधा पर डाल लेती। आदम कद शीशे में निहारने लगती। फिर जैसे अपने को झटका देती।

और फिर से सलाइयों की दौड आरम्भ हो जाती।

शाम सवा चार का समय था जब स्वेटर पूरा हुआ, किन्तु खुशी के स्थान पर मन कुछ कुछ जैसे अवसाद की भावना से भर उठा। घर पर कोई भी नहीं था। मम्मी पापा सर्विस पर तथा भाई-बहन स्कूल कालेज। कलाकृति को देखने वाला कोई नहीं। तभी मैं मौसम के प्रति सजग हुई थी। ठंड बकायदा खिडकी के रास्ते से अन्दर आने लगी थी। मैं खिडकी बंद करने की सोच ही रही थी कि कुछ क्षणों के लिए हक्की बक्की रह गयी। कोई आकृति खिड़की से सटी खडी थी।

मैंने आंखों को मला और शीघ्र ही संभल गयी। कोई लड़की थी। पहचान नहीं सकी। दिमाग पर जोर डालने पर लगा शायद कभी-कभार इसे अपनी गली से गुजरते देखा है। बस। इतना भर परिचय कोई परिचय नहीं होता।

मैडम" वह हँसने लगी— हाय इतनी तन्मयता ! वाह इतना सुन्दर डिजाइन—चिप्स को मखमल पर जड़ देने का अहसास होता है।"

बस। अंधे को क्या चाहिए वाली मेरी समस्या थी। मैं प्रशंसा ही तो सुनना चाहती थी। घरवालों के मुंह से, या किसी के भी मुंह से।

आइए-आइए अन्दर आइए ना।'

थैक्स फार काइंड इन्विटेशन। मैं तो कितनी देर से खड़ी थी आपकी एकान्त साधना में विघ्न क्या डालती भला !' कहते-कहते वह दरवाजे की ओर बढ गयी और मैंने फुर्ती से दरवाजा खोल दिया।

'क्या क्या वास्तव में यह डिजाइन आपको बहुत-बहुत अच्छा लगा ? मैंने उसकी ओर स्वेटर बढ़ाते हुए वाक्य को पूरा किया। चाहती थी कि कोई बीस बार इसकी सराहना करे।

वह मुक्त कंठ से स्वेटर की डिजाइन और सफाई की बारीकी से प्रशंसा करती रही। फिर पूछा— यह डिजाइन आपने कहां से लिया मैडम ?

किसी से लेने का सवाल ही पैदा नहीं होता मेरे लिए," मैंने स्वाभिमानपूर्वक कहा—' यह मेरी मौलिक कृति है।

'यदि आपको एतराज न हो'' उसने थोड़ा हिचकिचाते हुए कहा—'मेरा मतलब है मेरी मम्मी इसे देखकर बहुत खुश होंगी। अभी शीघ्र ही लौटा दूंगी।''

अब मुझे दूसरी प्रशंसा उसकी मम्मी से मिलने वाली थी सो पुलकित स्वर से बोल उठी—'जरूर-जरूर। बस जरा जल्दी भिजवा देना। पूरा बना हुआ स्वेटर तो मेरे मम्मी पापा ने अभी नहीं देखा।'

'आप चिन्ता न करें मैडम,'' उसने स्वेटर अपने बायें बाजू पर डाल लिया और 'अच्छा' कहते हुए चल दी।

मुझे न जाने क्यों, उसकी चाल में लापरवाही का सा आभास हुआ। मैं दुश्चिंता में घिर गयी। क्या इतनी आसानी से बिना उसका पता ठिकाना जाने स्वेटर उसे पकड़ा बैठी थी?

फिर सोचा। कुछ नहीं। ऐसा कौन सा अंधेर मचा है! निकट ही रहती लगती है। जरूर मुझे पहचानती है। तभी तो बात बात पर मैम मैडम कर रही थी। वह मेरी सम आयु थी। हो सकता है एकाध वर्ष छोटी हो।

मम्मी-पापा घर आ गये तो उनके लिए चाय बनाने लगी। छोटा भाई स्कूल से आते ही नाश्ते के लिए जिद करने लगा तो उसके लिए आलू के चिप्स तलने बैठ गयी। लेकिन रह रह कर मस्तिष्क में कुछ कचोटता रहा। दरवाजे की हर हरकत से चौंकती रही। घरवालों को कुछ नहीं बताया, क्योंकि मेरी जरा सी गलती पर मेरे भाई बहन मेरे वर्ग का ही मजाक उड़ाने लगते थे रहो बुद्धू की बुद्धू। क्या लेक्चरर बुद्धू नहीं होते दूसरी ओर से नारे जैसे प्रति उत्तर गूंजने होते ह—बहुतेरे होते हैं। एक अपने ही घर में देख लो ना। इसलिए मैं मिटपिटाई-सी उदास और चुप साधे थी। इंतजार और निरंतर इंतजार।

रात को जब डाइनिंग टेबल पर खाना लगाने लगी तो सहसा वहां स्वेटर को उपेक्षित पड़े पाया। खुशी से उसे अपने साथ चिपका लिया। गुस्सा भी आया कि किसी ने मुझे बताया तक नहीं। पूछने पर छोटे भाई ने स्वीकार किया कि आधा घंटा पहले जब वह गली में खेल रहा था तो

गया आदमी इसे दे गया था जल्दी में उसने इसे डाइनिंग टेबल पर ही रख दिया था और फिर मेलन में सब कुछ भूल गया था।

खैर, मैंने चैन की साँस ली। कई दिन तक मैं स्वेटर को जैसे अपने से चिपकाये फिरती रही। जगह जगह से प्रशंसा लूटने के लालच में।

अंतिम तिथि से दो दिन पूर्व ही मैंने इसे प्रतियोगिता में भेज दिया था। इसके बाद मैं लगातार कई कई सप्ताहों तक परिणाम के लिए बेचैन बनी रही। दिन गुजरते जाते और इसके साथ मेरा विश्वास दृढ़ रूप धारण करता जाता कि हो न हो प्रथम पुरस्कार मुझे ही मिलेगा। मेरा बनाया डिजाइन इतना सुंदर तथा मौलिक है कि किसी का हो ही नहीं सकता।

एक दिन सचमुच डाकिये ने मेरा नाम लेकर पुकारा तो मेरे शरीर का रक्तचाप एकाएक तेज हो उठा। डाकिया एक सौ रुपये का नोट लिये खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था—"बेटी, यहाँ दो जगह हस्ताक्षर कर दो।"

मैं पैसे लेकर कमरे में वापस लपकी—तो आ ही गयी मैं अव्वल। प्रथम पुरस्कार के एक सौ रुपये की ही तो घोषणा थी।

मैं कूपन और नोट को दोनों हथेलियों में लिये पलंग पर आकर गिर सी गयी। अब तक मेरा दिल जैसे किसी तेज यंत्र द्वारा बज रहा था।

किस तीव्रता से यह सब हुआ—जैसे स्वप्न—डाकिया—उसकी आवाज। पैसे—हस्ताक्षर। रुपये। कूपन।

अब मैं पहली बार सचेत हुई तो मुझे कूपन देखने का ख्याल आया, देखूँ क्या शब्द लिखे हैं। कम्पनी की मोहर वहाँ नहीं थी। केवल सौ रुपये और अनुराधा ही लिखा था। बस।

अरे यह किसका मनीआर्डर है। मैं बुरी तरह से चौंक गयी और अब मेरे दिल को जैसे किसी और भारी यंत्र का प्रहार सहना पड़ रहा था। मैं कुछ हाँफने लगी थी।

तभी बड़ा भाई कालेज से क्रिकेट खेल कर लौटा। सारी स्थिति उसे समझायी और गुत्थी सुलझाने में उसकी सहायता चाही। वह बड़ी लापरवाही से बोला—"तुम्हें रुपये मिल गये। बाकी चीजों को मारो

गोली।"

कुछ क्षणों के लिए मैं चचल हो उठी—"बताओ न भइया, यह अनुराधा कौन है ?" उसने मुझे घूरा तो मैंने जोडा—"कहीं अपनी ननद को तो प्लीज नहीं करना चाहती ?"

वह मुझसे नोट छीनने को उतर आया। नोक-झोंक हुई मगर मैंने शीघ्र ही भागकर नोट को ऐसी जगह छिपा दिया जहाँ से उसके फरिश्ते भी नोट को ढूंढने में सफल न रहे।

इस सबके बावजूद कुछ ऐसा था जिससे मैं बुरी तरह से उलझ गयी थी। एक तरह से बेदम हो चली थी।

दूसरे दिन सवेरे ही मैंने लम्बी बस यात्रा की। फैक्ट्री पहुँची। निटिंग कम्पीटीशन के आयोजकों से मिली। उन्होंने बताया कि दसेक दिन पूर्व उन्होंने परिणाम घोषित कर दिये थे। विजयी प्रत्याशियों को सूचना एवं पुरस्कार भी भेजे जा चुके हैं। बाकियों के स्वेटर वापस भेजे जा रहे हैं। आपका क्या नाम है ?

मैंने नाम बताया।

"तो आप स्वयं अपना स्वेटर वापस लेती जायें।"

"ठीक है। क्या मैं परिणाम सूची देख सकती हूँ।"

"अवश्य।" उन्होंने परिणाम-सूची व मेरा स्वेटर मँगाने का आदेश दिया। प्रथम अनुराधा

"यह लीजिए अपना स्वेटर।" वे कह रहे थे—"वैसे आपके व अनुराधा के स्वेटर की बुनावट डिजाइन में विशेष अंतर नहीं था किन्तु" वे रुके—"हूँ, बस वह हमें पहले मिला था, सफाई भी आपसे मामूली-सी अधिक अच्छी थी। आपके स्वेटर को हमने उसकी अनुकृति मान लिया। मानना ही चाहिए था ना !" वे व्यंग्य से हँसे और मुझे सन्देह की दृष्टि से देखा।

मैं अपमान से भर गयी। एकदम वहाँ से भागना चाहती थी। मगर जल्दी से अनुराधा का पूरा पता देखा 'ओह ! हमारी ही कालोनी की, वहीं '

घर लौटी तो शाम हो गयी थी। किसी से बात नहीं की। अलमारी

म दस दस के नोट रखे थे उन्ही म से दस नोट उठाये और अनुराधा के घर की ओर लपकी। जल्दी-जल्दी मकानों के नम्बर पढ़े। एक दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला।

अनुराधा यही रहती है ?'

हा। आओ। अन्दर चली आओ। अपने कमरे म है।' उन्होंने आगन के दूसरे छोर की ओर इशारा किया। शायद अनुराधा की मम्मी थी।

मैं उनसे कुछ नही बोली। सीधी अनुराधा के कमरे म पहुँची। वह कोने मे टेबल लैम्प जलाये झुकी हुई कुछ लिख रही थी।

'कौन ? वह एकाएक मुझे पहचान न सकी।

मैं तो जन युद्ध के लिए तयार होकर निकली थी। तन कर खड़ी हो गयी— 'पहचान लो।'

"ओह आप मड म ' उसने स्वर को सयत एव कोमल बनाये रखने का प्रयास किया। मगर आवाज वही काप कर शून्य म डूबक गया।

हाँ मैं ही एक क्षण के लिए मेरी मुट्ठी और बुरी तरह स जकड़ गयी। किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने उसे खोला। कस कर रुपये अनुराधा के मुह पर द मारे। नोट इधर उधर बिखर गये। वह उन्हे बीनने लगी— 'प्लीज ऐसा न कीजिये।"

मैं वही से उल्टे पाँव लौटने लगी। उसने नोट छोड़ मेरा हाथ पकड़ लिया—"मैं शर्मिन्दा हूँ। मैंने पहले भी बहुत-सी प्रतियोगिता जीती है। उनमे कई-कई दिन पुलकित होती रहा हूँ। लेकिन लेकिन इस जीत ने मुझे पस्त ही कर डाला। उठते बैठते मन भारी हो उठता है।

"कोई बात नही, साहब बच्चे। जब आदमी नगा हो जाता है तो उसे शर्माना नही चाहिए।

मैडम ! लगुएज प्लीज !" वह गुस्से से चिल्ला पड़ी।

लैंगुएज स ऊपर आचरण होता है। तुम्हें कोई घाटा नही पड़ा। तुम्हारा आचरण तुम्हे सम्मान दिलवायगा। परसो फक्ट्री म मत्री आयेंगे। तुम्हें मच पर हार पहनाये जायेंगे।

मुझे मालूम है परन्तु मैं नहीं जाऊँगी। मैं आपके नाम का प्रस्ताव

रखूंगी।"

"टूटा हुआ धागा जुड़ता नहीं। गांठ अखरती रहती है। गुड बाई।' मैं दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

उसने जल्दी से नोट उठाये। "मैडम!' उसने मुझे आंगन में आ घेरा, "अपने रुपये लेती जाइए। यह मेरे नहीं हैं।' उसने नोट मेरे हाथ में दिये।

'यह मेरे नहीं हैं।" मैंने नोट उसके हाथ में ठूंस दिये।

'मैं कहती हूं इन्हें मैं नहीं रखूंगी।" उसने फिर से नोट मेरी ओर बढ़ाये।

हमारे वाक्य निहायत ऊंचे और शुष्क थे। उसके घरवाले सब देख रहे थे। कुछ कह भी रहे थे, लेकिन वह सब हमें सुनायी नहीं दे रहा था। हम दोनों के चेहरे बेदर्द हो गये थे। स्वर कांप रहे थे। नोट बेशक्ल हो गये थे। मेरे हाथ शिथिल पड़ गये थे। ज्यादा लड़ने की ताकत मुझमें चुकती जा रही थी।

कब तक, आखिर कब तक यह अवांछित आदान प्रदान चलता रहेगा। मेरी समझ में आने लगा था कि इस प्रकार के कठोर आदान प्रदान में नोटों का क्या हश्र होगा।

अब की उसने नोट मेरे हाथ में थमाये तो मैंने उन्हें जोर लगा कर फाड़ डाला। एक दो तीन कई बार उनके टुकड़े कर डाले। चिंदियाँ हवा में उड़ने लगीं।

मैंने दांत पीसे—"तो यह लो" दरवाजे से बाहर भागी तो सुनायी दिया—"तो यही सही।"

कब्जा

बटी रजना का खत आया था माता जी का भेज दीजिए। इन्हे (पति को) तो वही आगे प्रैक्टिस पर जाना पड रहा है। मरी हालत तो आप जानत ह

यानि कि खराब है। क्या हो गया रजना का ?' लगभग पाच छ साल हो चले ये बाबू सतोष कुमार को नौकरी स रिटायर हुए। व शुरू से ही हर कहीं सतोष कुमार की बजाय सतू बाबू के नाम स ही अधिक जान जाते है। तबीयत उनकी बहुत अच्छी तो कभी रही नही। यू ऊपर से वे खुशमिजाज गमजोश दिखने का प्रयत्न करत रहत थे।

मगर अन्दर ही-अन्दर किसी गम से घुलत रहत। दूसरो के सामन तो क्या, वे खुद अपने सामन ही, उस गम का प्रत्यक्षत प्रकट नही होने देते। एक साध थी, जिसके पूरे होन की आस और सोच ही, समय समय पर उनमे थोडा उत्साह पैदा किय रहती और इसी चाह की पतली डोरी के सहार व जिये चले आ रह थे। मगर अब सेवा निवत्ति के बाद तो वे रह रहकर खाट ही पकडते रहते है। एक तो नौकरी का दबदबा जाता रहा दूसरा जिस गम को, दफ्तर के काम काजा म कुछ समय के लिए भुलाये रखन म व सफल हो पाते थे वह गम चौबीसा घटा का हो गया था।

उनके गोर चेहरे पर झुर्रिया क साथ साथ काली फुसियाँ भी उग आयी थी। थोडे-स सरसो के तल स वह मुह को रगडत रहते। व यही

कर रहे थे कि कमरे की दहलीज से 'भर' की आवाज हुई। गौर किया तो चिट्ठी थी। खोल कर पढ़ा तो असमंजस में पड़ गये। रजना बेटी को एकाएक क्या हो गया ? इधर मेरी खुद की तबीयत ठीक नहीं है। कैसे भेज दूं रजना की माँ सूरजी को ?

मालिक मकान तो चाहता यही होगा। वह पंडित शुरू से ही किसी अच्छे मौके की फिराक में है। हो सकता है सूरजी के चले जाने के बाद ऊपर-ऊपर से पत्नि बहुत महानुभूति दिखाने लगे। फिर डाक्टर से मिल-कर कुछ ऐसी वैसी दवाइयां दिला दे। फिर अस्पताल में दाखिल करवा दे। फिर बस फिर तो उसका काम कितना आसान हो जायेगा। यही, या ऐसा ही तो कोई मौका चाहता है वह काइयां पंडित। मैं पीछे अकेला क्या कर लूंगा ! हो सकता है, इस हालत में मुझे पता भी न चले जब मेरा सारा साजो-सामान सड़क पर बिखरने लगे।

ऐसी ऊटपटांग आशंकाओं के बादल हमेशा की तरह आज भी मन मस्तिष्क पर उमड़ने लगे। तभी दोनों हाथों में भारी थैला उठाये हुए सूरजी अन्दर आयी। वह पति के मुकाबले थोड़ी मजबूत कदो काठी औरत जरूर थी लेकिन ढलती उम्र के साथ कुछ-कुछ ढीली पड़ने लगी थी।

अंदर आते ही पति की ओर ज्यादा ध्यान न देकर, उसने अपनी कोना तलाश किया। थैले रखकर मुंह से 'उंह' की ध्वनि प्रसारित की, थकावट से निजात पाने के लिए। वह पसीने से लथ पथ हो रही थी। उसने स्विच बोर्ड का एक बटन ऑन किया पर पंखा चालू नहीं हुआ।

खीज उठी सूरजी, 'क्या हो गया ? क्या वाकई बिजली चली गयी या हमें सताने के लिए फिर से पंडित गिरजाशंकर की मेहरी ने कोई बदमाशी की है ?"

सूरजी क्या, सतू बाबू भी और देखा-देखी उनके घर के लगभग सभी सदस्य पंडित गिरजाशंकर की पत्नी को मेहरी ही कहते हैं। उनके अनुसार, सब कुछ होते हुए भी, वह कंजूसी के मारे पूरी मेहरी बनी हुई है। काली कलूटी। मुंह पर बढ़ती बेशुमार झुर्रियां। माथे से ऊपर और ऊपर दिन ब दिन खिसकते सफेद बाल। मैली सलवार और गले में फटी चुन्नी डाले हुए वह पूरी मेहरी लगती है, मेहरी। भले ही कहे, अपने को

मकान-मालकिन।

सूरजी गुस्से से खँखारते हुए वापस कमरे से बाहर गली में चली गयी। थोड़ा आगे पीछे घूम आयी। इस घने मोहल्ले के ओर छोर तक घूरती रही। परन्तु चमचमाते दिन के उजाले में उसकी जासूस निगाह वास्तविकता का पता लगाने में असफल होती रही। दूर दूर तक भी कोई ट्यूब लाइट या बल्ब जलता हुआ दिखायी नहीं दिया।

तब वह कमरे में वापस आ गयी, लेकिन बेचैनी की वजह से बैठ न सकी। फिर से कमरे के दूसरे दरवाजे से आँगन की ओर निकल गयी। बिल्ली के से धीमे कदमों के साथ जाकर कुछ क्षणों के लिए पंडित जी के कमरे के दरवाजे से सट गयी। अब की वह आँख की बजाय कान से काम ले रही थी। पंखा चल रहा है या नहीं ?

अन्दर से चौकन्नी आवाज उभरी, 'कौन ?'

इससे पूर्व कि दरवाजा खुल जाता सूरजी चोर की तरह अपने कमरे में पलट आयी। थोड़ा हाँफती हुई। "मर जाओ" कहकर जैसे अपने मुँह को साफ किया।

पति के निकट आकर देखा। उन्होंने कराह कर करवट बदली है। कीच-भरी आँखों को अँगुलियों से साफ किया है। आवाज में पूरी तल्खी भर कर बोले हैं 'फिर से कहाँ मर गयी थी ?

सूरजी ने बड़े निरपेक्ष भाव से पति और इधर उधर बिखरी चीजों पर नजर डालते हुए कहा 'महरी का स्यापा करने गयी थी। मैंने कहा देखूँ तो सही चुड़ैल ने फिर कहीं हमारी वाली लाइन का फ्यूज तो नहीं निकाल लिया। उसी के कमरे तक गयी थी। पंखा तो नहीं चल रहा। यह भी तो हो सकता है उसके बिजली तो हो मगर कंजूसी के मारे बन्द कर रही हो।

'ठीक है, ठीक है' कहकर मनोप कुमार थोड़ा रुक के साँस लेकर आगे बोले, 'कभी गिफ कभी बहाने से, जब बिजली चली जाती है या वे हरामी बंद कर देते हैं तभी हमारी बिजली की बचत हो पाती है।

सूरजी ने अब तक मटमैली साड़ी उतार कर दरवाजे के ऊपर टाँग दी थी। अब वह सिर्फ जम्फर पेटीकोट के साथ खुरदरे फर्श पर बैठ गयी।

सामने सब्जियाँ को फर्श पर बिखेर दिया। कुछ दाल मसालों के लिफाफों को दीवार के सहारे लगाती हुई महँगाई-राग पर तान छेड़ दी, "कुछ भी नहीं आता। चाहे जेब में कितने ही रुपये हों। सो ऊपर वाले की मौज मेरे पास पाँच के सिक्के को छोड़कर कुछ बचा हो। आपकी दवाई की शीशी भी नहीं आयी।"

"वह तो मैंने खुद ही मना कर दिया था। क्या फायदा फिजूल में पैसा उड़ाने का। मेरा रोग तो नित नया और हरा रहता है। जब सूखता है कुछ रोज के लिए, अपने आप ही सूख जाता है।"

"आपको भी तो सुखाता जा रहा है। कौन-सी कमी है आपको! ढंग से इलाज करो।" सूरजो एक लुढ़कते हुए आलू की ओर लपकी।

"ऊपर वाले की दया से, कमी तो शुरू से ही नहीं रही, लेकिन अब इस उठती हुई उम्र में क्या ताजा खून बनेगा! दूसरा इस पंडित और उसकी महरी ने भी तो हमारे नाक में दम कर रखा है।"

"अजी नहीं," सूरजो हँसने लगी, "वे तो खुद ही सारे मोहल्ले को कहते फिरते हैं कि हमीं ने उनके नाक में दम कर रखा है।"

यह सुनकर संतोष कुमार के चेहरे पर खुशी की हल्की-सी रेखा तैर गयी, "चलो अच्छा है। वे इसी तरह घुलते-सड़ते खत्म हो जाएँ।" वे थोड़ा खाँसे और उठकर बैठ गये। फिर सहमा कुछ याद करते हुए बोले, "सुनो, रंजना की तबीयत ठीक नहीं है। बुलाया है।"

"क्या हुआ उसे?" सूरजो ने घबरा कर पूछा।

"अभी-अभी चिट्ठी आयी है" उन्होंने सूरजो को पत्र दे दिया, "यह देखो।"

सूरजो जल्दी जल्दी इबारत पढ़ गयी, उतावलेपन के साथ। फिर थोड़ी राहत की साँस लेकर हँस दी "आह आप आदमियों को कुछ पता तो होता नहीं। बात को बतंगड़ समझ लेते हैं। उसके बच्चा होने वाला है ना तभी बुलाया है। नीचे यह भी लिखा है, कि आप दोनों साथ ही आ जावें तो ज्यादा अच्छा रहे।"

संतू बाबू ने भी थोड़ी चैन की साँस ली पर साथ ही उबल भी पड़े, "नादान लड़की, ऐसा खत लिखा है! दिल घर से तेरी होली गयी, हमें

के मारे हालात भूल गयी। क्यों हमें मरवाने पर तुल रही है।"

सूरजो ने धीमे स्वर में उन्हें रोका, "किस किस से बिगाड़ेंगे आप। न पहुँचने पर रजना तो बुरा मानेगी ही। दामाद साहब और नाराज हो जायेंगे। दोनों बेटे पहले से ही इसी बात को लेकर नाराज हुए बैठे हैं। प्रकाश ने तो पूरी तरह से किनारा काट लिया है। भूल ही गया। उसे जन्म दिया, पढ़ाया लिखाया। पहले लड़के अलग हुए, अब लड़की दामाद भी इसी बात को लेकर हाथ से चले जायेंगे।"

"तो मैं क्या करूँ" मन्नू बाबू हारे हुए स्वर में बोले। "इन नातों का तो हाल है नहीं। जायदाद किस तरह से जोड़ी जाती है, थोड़ी तकलीफ तो उठानी ही पड़ेगी। किशनु को ही देख लो। अभी तो होस्टल में रह कर ट्रेनिंग कर रहा है। पूरा बागी हो रहा है।"

"हाँ-हाँ" सूरजो ने बात को निष्कर्ष की सीढ़ी की ओर बढ़ाया "वह तो हमीं को गलत कहता है। उस मार को भी वह नहीं भूला जो एक सुबह, उठते ही उस पर पड़ी थी। आप आदमी भी तो पशु बन जाते हैं। एक ही कमरा है तो जरा मन रखो। रात को उसने सब देख लिया था। साफ-साफ बकने लगा। बाकी सभी भाई-बहन भी तो देखते हैं। बस किसी तरह दम साधे पड़े रहते हैं। बिल्ली खाने में रह रहे हैं हम सब।"

"बकस है बकस" बौखला गये मन्नू बाबू। मुँह से थोड़ी झाग निकल पड़ी।

तभी दरवाजे पर आहट हुई। आगन्तुक को देखा तो मुँह का जायका अधिक कड़वा हो गया। पुरानी स्मृतियाँ याद हो आईं। यही वह व्यक्ति है जो एक [illegible] बार, अपने साथियों को लेकर उन्हें और उनके परिवार को [illegible] पीटने आया था। फिर भी किसी तरह मन को उन्होंने नियंत्रित कर लिया। "आइए रामनराम जी। बैठिए।"

"बैठिए" कहने के साथ उन्होंने इधर-उधर देखा। इसे कहाँ बैठाएँ। मौसमी तथा घर-गृहस्थी की [illegible] अनायास [illegible] पर निगाह पड़ी।

"कुर्सी का [illegible] अंटनियों में क्या फेर रहती हो?"

सूरजो ने बिना कोई प्रतिवाद किए जल्दी-जल्दी कुर्सी से सारा सामान गिरा दिया। [illegible] और रामनराम के सामने रख

दिया। फिर दरवाजे में अपनी साड़ी उतार कर पहनने लगी।

'देखिए रगनराम जी, आप पंडित जी के दामाद हैं। इस नाते हमारे लिए भी वैसे ही आदर के योग्य हैं। पिछली बातें हम भूल गये थे। पर रात को आपने पुलिस का बुलाकर अच्छा नहीं किया। एस हमने यह मकान छोड़ना होता तो कब के ही छोड़ चुके होते।'

"ओह अंकल! यह कोई घबराने की बात नहीं। वह दाना तो मेरे पुराने साथी क्या क्लास फैलो हैं। इन टुच्चों को ऐसे ही पुलिस की नौकरी में आते ही शराब की लत लग जाती है। जिद कर बैठे तो मँगा कर देनी पड़ी। आपकी सौगंध अगर मैंने जरा-सी भी टच की हो।

"जब से तुम्हारी शादी इस घर में हुई, तुम्हें जानते हैं। तुम एक अच्छे लड़के थे मगर एक बार बाजार में तुमने हमारे बिशनु को पिटवाने की कोशिश की थी। आखिर कब तक भूलें। ऐसे हमारे भी खूंखार आदमी हैं "

"सॉरी अंकल! आपको कोई गलतफहमी हुई होगी। यही बात मैं अपने फादर इन-लॉ को समझाता हूँ कि दरार न बढ़ने नहीं देना चाहिए।

"अच्छा छोड़ो इसे। पहले बताओ ठंडा पियोगे या गर्म?'

'कुछ नहीं। कौन सा दूर से आ रहा हूँ। बिजली के चले जाने से आंख खुल गयी। सोचा आप लोगों से मिलता चलूं। रिटायरमेंट के बाद आदमी को सुख-चैन की जिंदगी गुजारनी चाहिए।

"रगतराम जी, यही बात अपने सास ससुर को समझाइये। कोई किसी को दुखी करके खुद सुख नहीं पा सकता।'

'जमीन तो आप कब की ले चुके हैं। वहां बढ़िया मकान बनवा कर ठाठ से रहिये। यहां आपने कौन-सा सुख पाया।'

'सो तो है ही बरखुरदार! पर एक जगह रहते रहते उस जगह से जुड़ाव हो जाना लाजमी है। सुना है लंबे अर्से के बाद कैदी को भी जेल कोठरी से मोह हो जाता है। सच पूछो तो मैं यहां सुखी हूँ। दुख होता है तो पंडित गिरजाशंकर जी को देखकर जो ख्वाहमख्वाह हमारी वजह से परेशान रहते हैं।"

'चलो ऐसा ही सही। जैसा चाहें फैसला कर लें।"

'यह कौन सी नयी बात है बरखुरदार। मैं तो हमेशा से तैयार हूं। पिछले पच्चीस सालों से यही मन तो हो रहा है। पहले-पहल उन्होंने खुद ही कहा था—सतू बाबू ! हटाओ यह किराया विराया। तुम्हीं ले लो दस आठ हजार में। मैंने अपना समझकर रिक्वेस्ट की—पंडित जी, थोड़ी रिआयत कीजिए। छोटे-छोटे बाल बच्चों वाला हूं। साढ़े छः हजार। सुनकर वे बोल नहीं बल्कि चीख पड़े—नहीं। चार साल बाद मैं ही चढ़ गया—ले लीजिए पंडित जी आठ हजार। कहने लगे—बेवकूफ समझ रखा है क्या ? तुम नहीं जानते। कीमतें कितनी बढ़ चुकी हैं। दस हजार। इसमें क्या शक है महँगाई की भी अपनी पालिसी होती है। सालों बढ़ती रहती है। लिहाजा पाँच साल बाद मैंने खुद ही डेढ़ हजार बढ़ाकर कहा—तो ले लीजिए पंडित जी साढ़े ग्यारह हजार। बिगड़ कर बोले—कान खोलकर सुन लो। पूरे चौदह हजार। तुम तो मेरे समझदार बेटे हो। ऐसे कहीं सौदे होते हैं। बुरा नहीं मानना। हमारे पंडित जी जरा अड़ियल तबीयत के हैं। दो-तीन बार मैंने हाथ जोड़कर विनती की, एक कमरा छत पर अपने पैसों का बनवा लेता हूं। साफ नट गये।'

'अड़ियल रवैया तो दोनों तरफ से है। मकान मालिक होने से उनका प्रस्टेज इशू आड़े आ जाता है। पर मैं उन्हें भी समझा आया हूं' रतनराम ने सीधे सतू बाबू के चेहरे पर घूरते हुए आगे कहा, "जो किराया आप उन्हें दे रहे हैं। उससे छः गुना सूद इसी फ्लैट की कीमत में मिलता रहेगा।'

ठीक कहा आपने। कल ही सतरह हजार मुझसे ले लें। वे भी क्या याद रखेंगे। मैं इसी का एक आलीशान रिहायश में तब्दील करके सबको चकाचौंध कर दूंगा।

अरे, यह तो बहुत ज्यादती है। जानते हैं आजकल इस कालोनी की जमीन पांच सौ रुपए फुट ढूंढ़ने से नहीं मिलती। इस पर तो कुछ बना भी हुआ है।

यहीं तो मैं भी कहता हूं। हर बार बात ऐसे ही आकर अटक जाती है। तुम तो आजकल का जमाना देख रहे हो।' सतू बाबू जार जार में

खाँसते हुए उठे और कमरे के कोने मे पड़ी हुई बाल्टी में से पानी निकाल कर कुल्ला करने लगे।

रंगतराम उठ खड़ा हुआ, "अच्छा मैं सलाह करके आपको बताता हूँ।"

रंगतराम के जाने ही सूरजी, पति को समझाने लगी, 'अब ज़िद छोड़िए। सारी ज़िंदगी इस खाने में गुज़ार दी। अब तो कहीं खुली हवा में साँस लेने की सोचें।'

सतू बाबू ऐसे गम्भीर मसले पर औरत जात को कम ही महत्त्व देते हैं। चुप रहे।

मुश्किल से डेढ़ घंटा गुज़रा होगा, रंगतराम वापस आ गया। साथ में पुलिस इंस्पेक्टर था। पिस्तौल लटकाये हुए।

"बैठिए साहब," रंगतराम ने कुर्सी ठीक करते हुए उन्हें बैठाया। खुद सतू बाबू के पैताने बैठ गया। सतू बाबू उठकर बैठ गये। दरवाज़े की तरफ देखा तो दो-तीन सिपाही खड़े हुए हैं।

"लाओ यार कोई बोतल निकलवाओ।" इंस्पेक्टर ने कुर्सी की बैक से लगते हुए कहा।

"हटो यार। यहाँ कहाँ रखी है! वह मैं पिलवाऊँगा। अपने फादर इन-लॉ के घर से। हाँ अंकल, मैं फादर-इन लॉ से बात करके बाहर निकला ही था तो यह पूरी चौकड़ी मिल गयी।'

'क्या कहते हैं हमारे पंडित जी?" सतू बाबू ने थोड़ा सँभलते हुए पूछा।

"अब कोई लंबी बात नहीं। आप दो महीने के अंदर यह मकान खाली कर देंगे। बदले में मैं आपको दस हज़ार रुपया दूँगा। इसे अपने नये मकान के लिए हमारी तरफ से इमदाद समझिए। बस।"

"मैं सोचूँगा' संतोष कुमार अँगड़ाई लेने लगे।

'अब ज़्यादा सोचेंगे तो ज़्यादा मुश्किल में आ जायेंगे। बताये देता हूँ। मैं कल हाँ या न में जवाब लेने आऊँगा।'

इतना कहते हुए रंगतराम पूरे दस्ते के साथ चला गया।

उनके जाने के बाद सूरजी ने हाथ जोड़ दिये। पहले रंगतराम की

पीठ की ओर, फिर उन्हें पति के सामने कर दिया, "बस बहुत हो लिया। खत्म कीजिए यह झक-झक। कहीं सचमुच में छोटे-दे आप हम पर हाथ उठा दें तो इस बुढ़ापे में मिट्टी खराब हो जायेगी। न वट यहाँ हैं, न आपके शरीर में जान।"

'हूँ सोचना पड़ेगा।' सन्तू बाबू फिर से सोचने लगे। 'है तो घाटे का सौदा।'

"अभी तो मैं हाथ जोड़कर कह रही हूँ" सूरजी खीज कर बोली, "मैं तो अब की रंजना के पास जरूर जाऊँगी। और वापस इस खोली में हरगिज फिर नहीं लूँगी। इतना समझ लीजिए, बस।"

सूरजी खाना बनाने चली गयी। संतोष कुमार पत्नी का कोई वाजिब जवाब नहीं दे पाये थे। ऐसे अवसरों पर वे पूरे माहौल से घिर जाते हैं। चारों ओर के दबाव से कसकर जैसे लघु होते चले जाते हैं।

डटे रहो दोस्त। आखिरी फतह तुम्हारी है। ज्यादातर लोग हँसते हुए कहते रहे। कुछ तथाकथित बड़े घर वाले संजीदगी से फरमाते छोड़ यार! किस मकान नामक जगह में अड्डा जमाये फँसे पड़े हो। अब तो तुम्हारा खुद का नक्शा तुम्हारे इस मकान के नक्शे से मेल खाने लगा है। थोड़ा अपने स्टेटस का भी ध्यान रखा होता।'

कई खट्टी मीठी यादें। अपमान के घूँट। सन्तू बाबू सोचने लगे तो सोचते ही चले गये।

मकान का नक्शा तो शुरू से ऐसा ही था। मगर उनका स्वयं का रूप रंग अच्छा-खासा था। सूरजी भी सूरज सी दमकती थी। एक प्रकाश था गोरी में। 1958 के आसपास इस अजीबोगरीब जगह अड्डा जमाया था। तब के हिसाब से यह सब ठीक था। मात्र एक कमरा। बाहर का दरवाजा ही मेन गेट। निहायत सँकरी गली। कमरे के दूसरे दरवाजे को पार करते ही एक छोटा बरामदा। बरामदे को आधा घेर कर रसोई। आगे जरा-सा आँगन। यहीं नहाना धोना। आगे मालिक मकान का इलाका शुरू हो जाता है। पानी बाहर गली के मोड़ पर लगे सार्वजनिक नल से। शौच के लिए आगे दूर तक फैली झाड़ियाँ। बहुत

बाद म रसोई-आंगन के सहारे एक छोटी-सी नैट्रिन बनी थी ।

सूरजी तो शुरू से ही विद्रोह पर उतरने लगी थी, 'कहा ला बिठाया ।' परन्तु धीरे धीरे वह भी पति की लाइन पर आ गयी थी । तब उसकी गोद में केवल एक बच्चा ही था । छोटे से परिवार के लिए यह क्या बुरा है ।' आराम से खिचने लगी इस गृहस्थ की गाडी । जो चीजें शुरू म दिक्कत देती थी वही नैतिक अभ्यास म शुमार होकर सहज होता गयी ।

कई लाभ भी दीखने लगे थे धीरे धीरे । जसे मज्जी मण्डी का पास होना । सतू बाबू का दफ्तर भी अधिक दूर नही था । हा, अस्पताल कुछ दूर था । दूर ही ठीक । भगवान सबको सहत ठीक रखे । दूर ही रखे अस्पताला से ।

शुद्ध लाभ तो तीन महीने बाद लाला कोशिश राम ने समझाया था । लाला कोशिश राम सतू बाबू के सहकर्मी थे । सतू बाबू के कान के पास अपने मोटे-मोटे होठो वाला मुंह ले जाकर बोले हो सकता है 18/- रुपया किराया कुछ ज्यादा लगे । लेकिन 'इन द लाग रन यह जबदस्त फायदे का सौदा रहेगा तुम्हार लिए । जब यह मकान मुकम्मल तौर पर तुम्हारा हो जायगा । मालिक मालकिन दोना दमे के मरीज है । लडका इनका कोइ है नही । जरा सब्र रखो और डटे रहो ।'

अस्तु आज तक जैसे तैसे व उसी सब्र की नीति पर डटे हुए है । धय की नीति जो हमार सामाजिक आचरण धार्मिक उपदेशा का मूलाधार है । इसी से तप कर देह कचन हो जाती है ।

लेकिन कहाँ क्या हो पाया आज तक ? पलट कर पीछे देखत हैं सतू बाबू । कहाँ का धय ! कब रहा धय ! धैय तो हर मुकाम पर उनका इम्तहान लेता आया है । कब उत्तीण हुए ह व उसम ! बच्चा के पढने बैठन, मान की जगह को लेकर हर रोज के झगडे । उन्ही का फैसला करत करत उनकी अपनी नाक मे दम आ जाता और वे बार-बार बौखला उठन । बाद मे लडक लडकिया के कई अच्छे रिश्ते सिफ इसी मकान की वजह स लौट गय । अब दामादा के ताने । दामाद ता दामाद, इसी घर म पली बडी हुई लडकियाँ तक, उसी घर म कदम रखन म अपनी हठी

समझती हैं। लड़के तो शुरू से ही बागी हो गए थे। अब नौकरी लगी तो क्या रुख करें इस घर की जानिब। मुन्नी बाहर भले ही मेरी वकालत करती फिर लेकिन घर में मुझे कुरेद-कुरेद कर मेरा भुरभुरा बनाया करती है। पण्डित से लड़ाई झगड़े के बाद जो मोहल्ले के लोग मेरे साथ सहानुभूति जताने आते हैं उन्हीं लोगों को मैंने खुद बाद में पंडित के पास बैठे देखा है। पंडित का छोटा दामाद कृपाशंकर वकील है, जो समय समय पर नोटिस भेजकर हमारी शान्ति भंग करता रहता है। साला बना आया हमारे धैर्य की परीक्षा लेने वाला।

सूरजी उनके लिए बिना चुपड़ी दो रोटियाँ दाल की कटोरी तथा थोड़ा सा टमाटर का सलाद एक थाली में रखकर छोड़ गयी।

वे धीरे धीरे खाना खाने लगे। सूरजी आयी और अब की थाली में कलौंजी भी परोस गयी, "अब की अड़ना नहीं। पता नहीं पुलिस थाने के या गुंडे।

"सोचता तो मैं भी हूँ कि फैसला हो जाये। लेकिन 1964 के बाद से आज तक हर बार कुछ हजार का फर्क प्रेस्टेज प्वाइंट बन जाता है।"

"कहाँ जाती है प्रेस्टेज जब होली पर भंगिन से टट्टी डलवा देते हैं। ठीक दरवाजे पर। जैसे-तैसे ट्रंक पर रखा नया-नया टेलीविजन कितनी हसरत से पहले दिन चालू ही किया था तो अगलों ने बिजली काट दी थी। कहा, अक्टूबर में अप्रेल फूल मना रहे हैं। बच्चों का तो क्या आपका अपना मन कितना खट्टा हुआ था। सारे उत्साह शौक पानी फिर गया था।"

"जीत के लिए कुर्बानी तो देनी ही पड़ती है। होगी। कृपाशंकर वकील होकर कुछ नहीं कर रंगतराम को भेजा है। हमारा कब्जा होकर रहेगा

इसी भरोसे तो तक में काट दी न बनाने दिया करा

तुम थोड़ा आ स्वग

आज से जमा में 27

मिलता है। स्टेशन पास, बाजार पास। आफिस भी पास है।"

सूरजी थोड़े तीखे स्वर में बोली "अब आफिस की तो जरूरत नहीं पड़ती, अब तो हर रोज अस्पताल भागना पड़ता है। उधर अपने लड़के ने प्लाट खरीद रखा है, उधर ही बड़ा अस्पताल बना है।"

'ठीक कहती हो तुम," सतू बाबू जैसे बेबसी के तहत बोले, "उस दिन काशिश राम और नारायण बाबू हाल पूछने आये थे सुना था क्या कह रहे थे? जिसे तुम थोड़ी सी जगह कह रही हो इसे आज अपने नाम रजिस्ट्री करा लो। कल को इसी से तीन गुना कीमत ले लो।" सतू बाबू खांसने लगे।

'अब आराम कर लीजिए। इन्हीं लोगों ने तो हम सबको खराब किया है। आखिर हम कमी किस बात की है। गांव में भी जायदाद है। पैसा पहले भी था। रिटायरमेंट पर तो और कितना मिला है।'

सूरजी ने बर्तन उठाये और रसोई की ओर बढ़ गयी। सतू बाबू उधर ही एकटक देखते रह गये। पहली बार शायद उन्हें लगा, एक नेक औरत नेक सलाह दे गयी है।

× × ×

सूरजी, बेटी रंजना के पास चली गयी। जाने से पहले 12 हजार में फैसला करा गयी। सतू बाबू ने मकान छोड़ना मंजूर कर लिया। पहले 5 हजार। मकान खाली करते ही 7 हजार और। शुद्ध लाभ। पुराने सहकर्मियों की सहायता से नया मकान तेजी से बनने लगा। सतू बाबू में जैसे जान आ गयी थी। जिस तिस से बड़ी शान में कहते फिरते, "नये माडल टाउन के पास है मेरा मकान। बहुत शानदार बना है। खूब लंबा-चौड़ा। कितनी जगह तो लान के लिए छोड़ी है।"

छ महीने बाद मकान का मुहूर्त हुआ। सभी लड़के, बहुएं दामाद, बेटियां आयीं। बाबू संतोष कुमार बहुत खुश थे। जैसे कोई कलाकार अपनी कृति को देखकर मुग्ध हो उठता है, उसी भाव से वह रहे थे, 'कोई कमी नहीं छोड़ी। सभी आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित है।'

सभी आये हुओं से बधाई स्वीकार करती हुई सूरजी बार-बार कह

उठती देखो ना, पूरी कॉलोनी भी कितनी बढ़िया है। आस-पड़ोस बहुत सभ्य है। उस मकान का तो वे लोग जानबूझकर मरम्मत करवाते नहीं देते थे। दीवारें बदरंग। फर्श टूटा फूटा। झाड़ू देते रहो मलवा समेटते रहो।

यह सब सुन-सुनकर आखिर विशनु अपने को बोलने से न रोक सका, हम सभी बच्चों को उसी रंग में रँगे रखा। अब तो मेरी भी कहीं बाहर पोस्टिंग होने वाली है।

इस पर प्रकाश ने भी ताना कस दिया, "अब तो वह जायदाद आप दोनों के लिए काफी थी। यह इतना बड़ा झंझट क्या मोल ले लिया?"

सूरजी ने उन्हें घूरा तो बाबू सतोष कुमार हँसने लगे। वातावरण को हल्का बनाने के लिए बोले "सब ऊपर वाले की माया!" उन्होंने आकाश की ओर अँगुली उठाकर जैसे नादान बच्चों को समझाया, 'जो चीज जिस वक्त के लिए ऊपर वाले ने लिखकर भेजी है, उसी वक्त मिलेगी।'

× × ×

सभी बेटे-बेटियाँ अपने-अपने घरों को चले गये थे। जाने से पहले प्रकाश सतू बाबू को पूरी तसल्ली दे गया था "पिताजी, अब आप किसी बात की चिंता न करें बिग बॉस मेरा अपना आदमी है। मैं बहुत जल्दी यहाँ का ट्रांसफर करा लूंगा। रजनी और बच्चे आपकी खूब सेवा करेंगे।"

नई जगह। नये लोग। चारों ओर हरियाली। दूर-दूर तक फैला खुलापन। फिर भी सतू बाबू घुटन-सी अनुभव करते हैं। सोचते हैं नई जगह जो है। अभी हम ऐसी जगह रहने के अभ्यस्त नहीं हुए।

यही बात सूरजी भी उन्हें समझाती 'धीरे धीरे मन लग जायगा। अभी किसी से विशेष जान-पहचान नहीं हुई। सभी तो अपनी अपनी भाग दौड़ में मशगूल हैं। हाँ अगर दस साल पहले यहाँ आ बसे होते तो अब तक ऐसी समस्या न होती। अब भी सब एडजस्ट हो जायगा। थोड़ा वक्त तो लगेगा ही। ओह यह कितनी अच्छी जगह है!'

पत्नी के इन वाक्यों से सतू बाबू अनुप्रेरित होते बातों में जैसे उन्हें मगन हुए पत्नी की हाँ में हाँ जाते। कभी पलंग पर सो जाते। मगर तब भी सब कुछ फीका फीका-सा। बेरौनक। बेस्वाद। बेमजा।

× × ×

पाच महीने ही मुश्किल से गुजरे थे कि फिर से सभी बच्चे इसी नये मकान में एकत्र हुए थे। सतू बाबू की मौत हो गयी थी।

सूरजी एकदम सूख गई थी और सबके सामने खड़ी खड़ी काप रही थी। प्रकाश उसे सात्वना दे रहा था "मा चिन्ता न करो, मैं बहुत जल्दी यहा आ रहा हूँ। स्पेअर होकर ही आया होता। तार की वजह से जल्दी आना पड़ा।"

'भैया ! तुम्हारी तो हर जगह अप्रोच है। मेरे यहीं के पक्के आर्डर करवा दो ना।' किशनु प्रकाश से कह रहा था।

'सब हो जायेगा। देखते जाओ।" प्रकाश छोटे भाई किशनु के कधे पर हाथ रखकर उत्साह से बोल रहा था।

रजना, मा को पकड़कर अपने साथ बैठाकर, आखो के आसू छिपाते हुए कह रही थी, 'मा, अब तुम्हारा मन लग जायगा। इनका फील्ड पीरियड पूरा हो चुका है। हम इधर ही आने की कोशिश कर रहे हैं।"

छोटे बच्चे शोर मचाते हुए एक दूसरे का पीछा कर रहे थे। लुका-छिपी का खेल—"हट जा, यह जगह मेरी है।"

सभी, कुछ-न-कुछ बोल रहे थे। बुढ़िया चुप थी।

वही मोड

मा एक अर्से से बीमार चली आ रही थी।

इधर जो एक छोटी-सी नौकरी मेरे हाथ में थी, वह भी जाती रही। बड़ी बेचैनी थी। कई दिनों से मारा मारा फिर रहा था। बाल एक-दूसरे में फँस गये थे। कपड़े धोने का होश ही नहीं था। और न ही था शायद घर में साबुन का छोटा सा टुकड़ा।

फटेहाल मकसूद के पास पहुँचा। अब सिर्फ यही मकसूद एक सहारा दिखायी दे रहा था। बाकी सब रिश्तेदार या दोस्त अपने अपने हिसाब से अपना फर्ज पूरा कर, अलग हो गये थे। रोज कोई किसी को किस हद तक दे सकता है।

मकसूद कुछ देर तक खड़ा सोचता रहा। फिर बोला, 'तुम असद चौधरी के पास जाओ।

कौन असद चौधरी?' मैंने उतावली से पूछा, 'मैं तो उन्हें जानता नहीं।" मेरी आवाज फट रही थी।

'ज्यादा जानने की जरूरत भी नहीं। उनसे एक बार मिलो तो। अपना दुखनामा कह सुनाओ। वे हर जरूरतमंद की मदद करते हैं। मैं तो खुद पहले से ही नाजुक दौर से गुजर रहा हूँ वरना कहते-कहते मकसूद रुक गया।

जानता हूँ। मकसूद झूठ नहीं बोलता और न ही कोई गलत राय ही देगा।

'असद चौधरी' लगा बहुत पहले बचपन मे सुना हुआ कोई नाम है। बहुत-स नाम एक जसे हात हैं मिलते जुलते, मगर हकीकत यही थी कि मैं किसी असद चौधरी का नही जानता था और न ही इस वक्त मरे पास पसोपेश मे पडन की कोई गुजाइश ही थी। जख्मी मे असद चौधरी का पता ठिकाना पूछा और आगे बढ गया।

कई गलिया के मोड काटता आगे पीछे घूमता घुमाता आखिरकार असद चौधरी के घर तक जा पहुँचा।

भारी भरकम पुराने किस्म का बडा दरवाजा था। दो-तीन बार कुडी बजायी, तो अन्दर से खासी के साथ एक आवाज उभरी 'कौन हो भाई? चले आओ। दरवाजा खुला है।"

सचमुच दरवाजा खुला था। थोडा जोर लगाते ही चर की ध्वनि पैदा हुई। अन्दर पहुँचने का रास्ता निकल आया।

आरामकुर्सी पर असद चौधरी अधलेटे सुस्ता रहे थे। उन्होन सिर उठाकर मेरी तरफ देखा, 'कहो, कहा से आये हो?"

मैंने हडबडी म अपना घर बार का ब्योरा और उनके पास आने का मकसद जाहिर कर दिया। मुझे खुद लग रहा था कि मेरी जबान मे कही हकलाहट आ शामिल हुई है। कुछ शब्द पूरी तरह या अधूरी तरह गायब हो रहे हैं।

"अनवर हुसेन बताया, तो तुम उनके बच्चे हो। मैं उसे नही जानता था, बाद मे जान गया था। खैर, बैठो। हिचकिचाने की जरूरत नही। तसल्ली से बातें करो। अरे मैं तो बठे-बैठे अकड गया।"

असद चौधरी कुर्सी से उठ खडे हुए। अपन लम्बे कमरे में चहलकदमी करते हुए फिर बोले, 'हां, अब कुछ गर्मी आयी है। शायद सूरज बाहर निकल आया है।"

उन्होने आहिस्ता आहिस्ता ओवरकोट उतारा। उसे सामने की दीवार पर लगे एक बडे कील पर लटका दिया। ऊपर एक औरत का बडा फोटोग्राफ टँगा था। कुछ देर यू ही उसे देखते खडे रहे। कोट उतार चुकने के बाद वे एकदम से दुबले पतले लगन लगे थे। हां उनकी लम्बाई से लगता था किसी उम्र म तगडी काठी के इसान रहे होगे।

'तुम्हें यहाँ किसने भेजा है ?' लगा जैसे तस्वीर में पूछ रहा हो इसे यहाँ किसने भेजा ?'

मकसूद अहमद ने।

मैं आगे कुछ और बोलता इससे पहले उन्होंने दूसरा सवाल कर दिया यहाँ पहुँचने में कोई दिक्कत तो पेश नहीं आयी ?"

'हुई। कुछ लोगों से पूछना पड़ा। मगर अब देखता हूँ, रास्ता बहुत मुश्किल नहीं है। इधर से कभी एक-दो बार गुजरा हूँ। दूर जरूर है। दरअसल हम तो दरिया के उस पार रहते हैं।"

उन्होंने हूँहूँ हूँहूँ किया जैसे पूरी तरह समझ गये हों। "तुम्हारा गला खुश्क-सा लग रहा है। कुछ खाओगे ? सामने के दुकानदार को आवाज देकर कुछ मँगाए लेता हूँ। चाय अगर तुम हिम्मत करो तो बावर्चीखाने से खुद बना लाओ। घर की चाय पीने को हमारा भी मन कर रहा है। मेरी तो ताकत जवाब दे चुकी है वरना हरगिज तकलीफ न देता। पर हो तो अपने ही बच्चे।

"इसमें तकलीफ कैसी ?' कहता हुआ मैं रसोईघर में चला गया। स्टोव में पम्प मारने लगा। उस पर खासी धूल जमी हुई थी। उसे कुरेदता रहा, चाय भी बनाता रहा और सोचता भी रहा कि यह बूढ़ा मुझे यूँ ही टाल तो नहीं रहा। चाय का कप पिलाकर चालू तो नहीं कर देगा। अजीब आदमी है। मैं इसका बच्चा हूँ। मेरे वालिद को जानता भी था। नहीं भी जानता था। मगर मुझे उसके लिए इस पहेली को पहेली बने रहने में ही फायदा नजर आने लगा। लगता है बूढ़ा सठिया गया है। मुझे रुपये दे दे। बस ! इसरार कर नहीं सकता है। इन्तजार करना लाजमी है।

मैं चाय की ट्रे लेकर कमरे में दाखिल हुआ तो सेण्टर टेबल पर मिठाई और नमकीन की दो बड़ी प्लेटें रखी थीं। साथ ही पेपरवेट के नीचे कुछ नोट चमक रहे थे।

वे मुझे जोर दे-देकर मिठाई खिलाते रहे। चाय का आखिरी घूँट लेते ही उन्होंने रुपये उठाये और मेरी जेब में डाल दिये—' चार सौ ही रखे थे ना। अगर ज्यादा की जरूरत हो तो दुपहर बाद चले आना। इन्तजाम कर रखूँगा।

'बहुत-बहुत शुक्रिया जनाब। फिलहाल इतने से ही काम चल जाने की उम्मीद है। नहीं चाहूँगा, आपको और तकलीफ दूँ। मैं किसी हद तक दबना भी नहीं चाहता कि उठाने में दिक्कत पेश आये।' मैं संकोच से भर गया था।

"मैंने तुम्हारे सामने कोई म्याद या शर्त तो नहीं रखी। बातों में उसी की तरह होशियार हो।' उनका स्वर एकाएक मन्द हो गया।

मैं खड़ा होकर उन्हें ताकने लगा। तभी हवा का एक ठंडा झोंका अंदर आया। वे ओवरकोट की तरफ उठे मगर ऊपर टँगी तस्वीर की तरफ निगाह जम गयी।

मैंने चाहा मैं ही उन्हें कोट पहना दूँ। मैं जरा आगे भी बढ़ा। मेरी आहट पाते ही वे चीख पड़े—'अपना और वक्त जाया नहीं करो। अब भागते नजर आओ। और कुछ जरूरत हो तो उनके पास आना। वरना शक्ल मत दिखाना।' वे कांपने लगे थे।

मैं हैरान होकर चल दिया। अपमान के घूँट भरता हुआ। ऐसा मैंने क्या कह दिया जो चौधरी साहब ने मेरी सरासर तौहीन कर दी! वक्त का तकाजा था। वरना सारे नोट उनके मुँह पर दे मारता। बचपन में ही बाप से जुदा हो चुका था। माँ ही मेरे लिए एक बड़ा सहारा थी।

मैं उसी रास्ते से गुजर रहा था। पता नहीं मकबूल कब से मेरे साथ-साथ चल रहा था। मैंने पहली बार उससे सुना— लगता है, काम नहीं बना। असद चौधरी किसी को खाली हाथ तो नहीं लौटाते। कई बरस पूर्व उचित चिकित्सा के अभाव में इसकी बीवी दम तोड़ गयी थी। अब कोई खास आगे पीछे नहीं है। अपने पर खर्च बहुत कम करते हैं। अब अच्छी पेंशन मिल रही है। मगर शायद तुमने बहुत बड़ी रकम माँग ली होगी या...'

'नहीं, मुझे पूरी रकम मिल गयी है। सिर्फ जल्दी में हूँ।' मकबूल की बात काटता हुआ मैं उससे बहुत आगे निकल गया।

डाक्टर की दुकान पर पहुँचा, तो उसने मेरी तरफ ध्यान नहीं दिया और मरीजों से बातें करने लगा।

मैंने पहले फुर्ती से नोट निकाले। डेढ़ सौ गिनकर उसकी तरफ बढ़ा

दिये तो किंचित मुस्कान उसके होठों पर उभर आयी— कहिए क्या हाल है आपकी वलिदा का ?"

डाक्टर साहब वह उसी तरह है। फायदा जरूर हुआ था, लेकिन बीच में दवाई के रुक जाने से हालत अपनी नाजुक जगह पर आ पहुँची है। मेरे साथ चलिए।'

घबराइए नहीं ' डॉक्टर ने जल्दी से आलमारी से कई कैप्सूल, इंजेक्शन निकाले और मुझे अपने स्कूटर के पीछे बैठा लिया।

माँ बेहोश थी। पड़ोस की कोई औरत उन्हें सँभाल रही थी। डाक्टर ने नब्ज देखी। बगल में थर्मामीटर लगाया। इसके बाद इंजेक्शन। लगभग दस मिनट बाद माँ कराह उठी। हमने करवट बदलवाने में सहायता की।

अब बिलकुल कोई डर नहीं रहा,' डॉक्टर ने कंधे थपथपाते हुए मुझे आश्वस्त किया बहुत कीमती इंजेक्शन है। असर कर गया। होश आने पर एक कैप्सूल दे दीजिएगा। दूध के साथ। मैं शाम का चक्कर लगा जाऊँगा।

दो घंटे बाद ही माँ को होश आ गया। मुझे सामने बैठा देख बहुत धीमे किन्तु उत्साहित स्वर में बोली— कहाँ था रे ? देखते-देखते मेरी तो आँखें पथरा गयीं। तू मुझे कहाँ से वापस खींच लाया ?

मैं तुष्ट भाव से माँ को देखता रहा। चुपचाप।

हाय मेरे लाल पर इस उम्र में ही कितनी मुसीबतें टूट पड़ी हैं कैसा मुँह निकल आया है।' माँ की आँखें गीली होने लगीं— बोलता क्यों नहीं कहाँ गया था ?'

माँ, कोई असगर चौधरी हैं उनके पास रुपये लेने गया था।'

'नदी के उस पार ?' कहते-कहते माँ जैसे घबरा गयी। 'वहाँ कैसे पहुँच गया ? मुझसे पूछ तो लिया होता।

क्या तुम उन्हें जानती हो माँ ?

हाँ बेटे तेरे अब्बा के दोस्त थे। मगर इन्सान कुछ इस तरह बिगड़े कि तुम्हारे अब्बा के मरने पर भी असगर का उनका मुँह देखना गवारा नहीं हुआ। कहते-कहते माँ खाँसने लगी।

मैं चाहता था माँ आराम से लेटी रहें। इस बार दिन

यही स्थगित कर द। किन्तु खाँसी क रुकते ही माँ न एक आह खींची और पुन धीरे धीरे बोलने लगी।

" एक लम्बे वक्त स हमारी असद से मुलाकात नहीं हुई थी। एक दिन आया तो बोला—बीवी सख्त बीमार है। आगरा जाना होगा। पाच-छ सौ रुपये चाहिए। तेर अब्बा ने दूसरे दिन रुपये दन का वायदा तो कर दिया, लेकिन फिर आगा पीछा सोचन लगे। इसकी भी एक वजह थी। दरअसल तेरे अब्बा बहुत रहमदिल इसान थे। जिस-तिस न झूठे सच्चे बहाने बनाकर उनस छोटी बडी रकमें हडप ली थी। उन्ह ठेस तो उस वक्त और भी बुरी तरह से लगी, जब पता चला कि चद लोगो ने बीमारी का बहाना बनाकर जो रुपये लिय है उसकी शराब वगैरह पी गये हैं। व हरेक पर शक करने लगे। किसी को भी उधार न दन की कसम खा ली। ठीक वही दौर था। उन्होंन दूसरे दिन असद चौधरी स भी कह दिया—मेरे पास कुछ नही है।

" दो-तीन रोज तक असद और कही से रुपया का बन्दोबस्त करन के लिए भाग-दौड करता फिरा कि इतने म उसकी बीवी के इंतकाल का तार आ गया।

" असद तेर बाप के इस झूठ को समझ गया और उनसे नफरत करने लगा। तू कौन-सा मुँह लेकर उसक पास पहुँच गया ? " मा फिर खाँसन लगी।

एक तरफ मा खास रही थी, दूसरी तरफ मेरी आखो क सामन असद चौधरी का कापता हुआ तथा तस्वीर को एकटक दखता हुआ चेहरा उभर आया।

अनायास हाथ अपनी आखो पर आ पडा जो कुछ भीगी भीगी-सी लगी।

टूटते हुए पख

बहुत ही छोटा था मैं, तब से यह अनोखा और लाजवाब पक्षी मेरे पास था। मुलायम मुलायम सुनहरे परों वाला। खूबसूरत पतली और खूब लम्बी गर्दन जिसे थोड़े थोड़े समय बाद ऊँचा उठाता जैसे दुनिया भर का मुआयना कर रहा हो। पतली छोटी गोल, तीखी आँखें जो बहुत दूर तक की तमाम चीजों दृश्यों को सहेजती रहती। वह बहुत मीठा मीठा बोलता और हाँ कभी कभी उसकी जबान में तल्खी भी भर उठती, जिसका रोकना टोकना शायद किसी के वश की बात न होता। मगर सबसे हैरानी की बात यह थी कि जो कुछ वह बोलता उस वक्त न सही लेकिन बाद में सभी कहते कि हाँ ऐसा ही वे भी सोचते हैं और शायद यही सच है।

आह, अब क्या करूँ!

एकाएक क्या हो गया था मुझे

इस पक्षी पर तो मैं दिन रात अपना सब कुछ निछावर किये रहता था। इसी के लिए बचपन से लेकर अब तक कई लड़कों और दूसरे लोगों से लड़ाइयाँ भी मोल ली थी।

गहरी दृष्टि। दूर ऊँची नीची बातों पर कान खड़े हुए। प्यारा-सा मुँह। चंचलता से भरी छोटी छोटी आँखें। साथ ही चेहरे से हरदम टपकता आत्माभिमान।

तीन दिन का मेहमान था यहाँ। व्यक्ति के सामाजिक दायित्व,

'शिक्षा के विस्तृत आयाम', नीतिशास्त्र की सामान्य समस्याएँ इन विषयों पर कुछ विद्वान साथियों के भाषण थे। कुल मिला कर बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम थे। तीन दिन देखते ही देखते जैसे पानी में गुजर गये। जैसा कि होता है इन संगोष्ठियों में किसी बड़ी हस्ती की भागीदारी जरूरी होती है। वरना आप सब कितना भी अच्छा क्यों न बोलें समाज के लिए एक से एक मार्गदर्शक व्यावहारिक विचार क्यों न रखें उनका कोई न्यूज़ नहीं बन पाती। परन्तु वहीं किसी भी मंत्री आदि के आ जाने में, साधारण से जलसे की रीढ़ मज़बूती पकड़े रहती है।

हम सबको मालूम था और शायद मंत्री जी को भी मालूम था कि उक्त विषयों से उन मंत्री जी का कुछ भी लेना देना नहीं था। मगर फिर भी उनकी वहाँ मौजूदगी दोनों ही पक्षों के लिए हर लिहाज से 'लाभदायक' और चर्चा का विषय तो था ही। शायद मंत्री जी की अपनी नजर में, उनकी ऐसे समिनार में उपस्थिति मात्र ही उनको विद्वान बना देने के लिए काफी थी। बस मेरा तरफ यह चर्चा भी आम थी कि उन मंत्री जी की रुचि महिलाओं में अधिक थी। हमारे साथ भी कई महिलाएँ थी, जो आजकल के रिवाज के मुताबिक काफी सजधज कर, खुशबू लगा कर कुछ लोगों के लिए 'शुष्क स्थान' को सँवार हुए थीं।

खैर, गोष्ठियाँ अपनी पूरी वैचारिकता के साथ चलती रहीं। ऐसे माहौल में विद्वानों के मतभेद भी खूब उभर कर सामने आते रहे और विषय को और धार देकर उनमें ताज़गी भरते रहे। किन्तु कभी-कभी स्थिति तब आती जब कुछ लोग बहस को व्यक्तिगत स्तर पर उतार कर एक दूसरे को लांछित करने लगते। तब मैं गुस्से से भर उठता लेकिन मेरा पंखी मुझे नियंत्रण में कर लेता, समझाता कि बहुधा विषयों में मतभेद न होते हुए भी कुछ लोग उनके प्रस्तुतीकरण को ही बहस का मुद्दा बना कर नाम कमाने का मोह त्याग नहीं पाते। अतः बहुत चाहने पर भी मैं चुप बना रहा।

परन्तु अंतिम समापन दिवस पर कुछ लोगों ने मुझे अपने विचार रखने के लिए उठा कर माइक के सामने ला खड़ा किया।

अब मैं तो क्या बोलता, मेरा पंखी चहचहाने लगा। उसने बोलना

शुरू किया तो मुझको लगा कि जैसे कोई गीत सुना रहा है। लेखन में तो वह बहुत आकर्षक था ही, लेकिन उसकी असली खूबी थी कि अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की स्थापित धारणाओं और मूल्यों का भली प्रकार याद रखना किसी के लम्बे से लम्बे वाक्यों को ज्यों का-त्यों दोहरा देना और सब कथनों की बारीकी से विवेचना करना, मन को आन्दोलित करने वाले विचारों को निरन्तर गुनगुनाते रहना।

जिन जिन बिन्दुओं पर मेरी अपने साथियों से असहमति थी, उन्हें भी उसने बड़ी शालीनता तथा बड़े सन्तुलित ढंग से ऐसे काटा कि सारा विषय जैसे नयी सजना बन उठा।

तब बहुत देर तक तालियाँ बजती रही थीं। तालियों में मंत्री साहब सबसे आगे थे। वे मेरी ओर ऐसे बढ़े कि मैं सहम गया।

अब सबसे अन्त में मन्त्री जी का अध्यक्षीय / समापन भाषण था। वे जैसे और सब कुछ भूल गये। दो तीन रोज क्या-क्या हुआ था। किन विषयों पर गोष्ठियाँ हुई थीं। किस किसने क्या-क्या कहा था। उसकी उनके तई और कुल मिलाकर क्या-क्या प्रतिक्रिया रही। यह सब कुछ नहीं।

बस उनके भाषण का मूल विषय था—मेरे पक्षी की तारीफ। जो निहायत ही खूबसूरत था। मुलायम और मासूम था। खूब चहचहाता था। खुल कर गाता था। अपने राग में अलमस्त बेबाक सधी हुई जबान का मालिक। किसी की खुशामद में बोले गये शब्दों का वह वह तरज देता कि अगला मन-ही मन पानी पानी हो जाय। या फिर उसकी दबंग आवाज से कुछ लोग दहशत में भर उठें। ऐसे साहस वाले पक्षी के गुणगान कौन नहीं करता। इसी तरह से अनेक जुमले मंत्री महोदय कितनी ही देर तक बोलते चले गये और पूरी दोपहर हो गयी।

छुट्टी।

रेगिस्तानी धूप और भयंकर गर्मी। फिर किसी तरह हम सब खाना निगलने लगे और अपने-अपने रास्तों की तलाश में जुट गये।

मैं अपनी अटैची में ज्यूं त्यूं सामान भर रहा था कि एक अर्दली मेरे पास आया। कमिश्नर साहब चाहते हैं आप जाने से पहले उन्हें मिल कर

जायें।" उसने बड़े धीरे से अपनी चौड़े पट्टे की पगड़ी को स्थिर करते हुए झुक कर कहा।

"ठीक।' कुछ सोचता हुआ मैं फुसफुसा दिया था।

आह! यहीं से गोपनीय वार्ता शुरू हुई थी। मुझे जन-साधारण से तो क्या अपने आप तक से काट देने के लिए।

मैं कमिश्नर साहब के पास पहुँचा। मेरी गर्दन कुछ लटकने लगी थी।

'सुनो।' उन्होंने अपनी व्यस्त गर्दन को उठाया। वे इतनी गर्मी के बावजूद मोटे प्रेस किए हुए खाकी कपड़े पहने हुए थे।

"जी।"

'तुम्हारे ही फायदे की बात करता हूँ।'

"शुक्रिया, कहिए।'

'चाहूँ तो पहले अपने फायदे की बात सोच सकता हूँ। लेकिन नहीं। सिर्फ तुम्हारे फायदे की बात। मैं तुम्हें उतना फायदा नहीं पहुँचा सकता जितना मन्त्री जी।' उन्होंने बहुत धीमे स्वर में यह सब कहते हुए, मुझे अपने पास खड़ा कर लिया फिर हथेली से मेरे कालर को बुरी तरह से मसला कि वह भुरभुरा गया।

बताइए, मेरे साथी चले जायेंगे।' मैं थोड़ा घबरा गया।

उन्हें जाने दो। मन्त्री साहब को औरतें पसंद हैं।' कमी भी क्या है। अब यहाँ तुम्हारे पत्नी पर मर मिटे। यह उन्हें दे दो। अभी तो सर्विस शुरू की है। तुम्हें बहुत-बहुत प्रमोशन लेने हैं। मेहरबान हो जायेंगे। बहुत जल्दी तुम कहीं से कहीं ऊँचे जा पहुँचोगे।'

'पत्नी! यह कैसे हो सकता है?" मेरी जबान लड़खड़ा गयी। गले में बलगम जम गयी।

तुम्हारे फायदे की बात। सिर्फ इतने विद्वान होने से काम नहीं चलता। लोग तो ऐसे सेमिनार में आते ही सिर्फ इसीलिए हैं ताकि मन्त्रियों कमिश्नरों से सीधा परिचय प्राप्त हो सके। जहाँ तुम इतने कुशाग्र बुद्धि और विद्वान हो वहाँ उतने ही भोले भी हो। इशारा भी नहीं समझते। तुम नहीं समझे। भले ही दूसरे लोग समझ गये हों। उन्हें

तुम्हारा पभी चाहिए।

"नहीं नहीं।" मैं मुश्किल से दो बार कह पाया। गला सूख गया। गिरते गिरते वापस मुड़ने लगा।

"ठहरो।"

उन्होंने पानी मँगाया। मैंने चुपचाप पानी पिया।

"जा सकते हो। सिर्फ तुम्हारा फायदा। और कुछ मंशा नहीं थी हमारी। भाग्य बार बार आकर द्वार नहीं खटखटाता। नहीं तो न सही।"
उनकी जुबान से उपेक्षा भाव उभर आया था।

तब और ज्यादा देर नहीं की मैंने। दम न घुट जाए। गर्दन को तनी से झटका देकर ऊपर की ओर उठाया। मुड़ा और तेज कदमों से बाहर आ गया।

आसपास खेजड़ी के दो चार पेड़ थे। शायद उन्हीं से टकरा कर घाटी ठंडी हवा का झोंका मुझे सहला गया।

घर पहुँचा। कुछ लोग जा चुके थे। कुछ जा रहे थे। और बाद से अभी खाना खा रहे थे। एक मित्र ने मेरा हाथ पकड़ कर खाने के लिए साथ चलने को कहा। मैंने बताया—खाना तो खा चुका हूँ। फिर भी साथ देने के लिए उसने मुझे साथ ले लिया। कहा—"मंत्री साहब को तुम्हारा पभी बहुत भा गया।"

मैं गुमसुम सा सोचने लगा। फिर हाथ धोने के बहाने उससे अलग हो गया। फिर एक कोने में बैठकर सबको धीरे धीरे जाते हुए देखता रहा। फिर मौका पाकर चुपचाप भाई के कमरे में जाकर बैठ गया।

बाहर की ओर आसपास की तमाम हलचल थम चुकी थी। बकाया थी मेरे अन्दर की हलचल। जो थामने पर भी काबू से बाहर।

कितनी देर तक अकेला बैठा जमा नफी के सवालात करता रहा।

अब मौका है। गरज साथियों के बीच तो यह नायाब तोहफा उनको दिया नहीं जा सकता था। धड़कते दिल से मंत्री साहब की रिहायश की तरफ बढ़ चला। धीमी पग चाल।

मगर तब तक बहुत देर हो गयी थी।

पता चला कि खाना खाने के बाद साहब आराम फरमा रहे हैं।

मैंने ड्राइवर के हाथ कहलवा भेजा कि मैं वही पक्षी उन्हें भेंट करना चाहता हूँ। और इंतजार करने लगा। मगर वे नहीं आये।

नाजुक पक्षी धूप और लू के मारे तिलमिलाने लगा। इंतजार लम्बा होता चला गया। पक्षी तड़फड़ाने लगा। पिंजरे में निकाल उसे हाथ में ले लिया। पक्षी चीख उठा— 'चलो।'

मैंने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। फिर मैं साहब की राह देखने लगा।

हाथ के दबाव से पक्षी मसल गया किसी बच्चे की तरह। 'चलो घर चलो' की रट लगाने लगा। मगर मेरे कान साहब के कदमों की राह जोहते रहे।

पक्षी लम्बा और शिथिल होता चला गया।

दुबारा कहला भेजा। जवाब मिला आ रहे हैं। मगर नहीं। नहीं आ रहे थे। तंग आ गया था इंतजार करते करते। सोचा, चल दूँ। लेकिन अब मैं अपने को फँसा हुआ पा रहा था। क्या पता, मेरे मुड़ते ही वे आ जायें और अपने को अपमानित अनुभव करें। कहीं बाद में बदले पर उतर आयें।

पक्षी कुछ देर तक पानी-पानी चिल्लाता रहा। फिर निढाल-सा होने लगा। सोचा, उनको दे दूँगा तो वही पानी पिला देंगे। और कितनी देर करेंगे। आते ही होंगे अब।

देखा पक्षी डर गया है बेचारा। जैसे साहब नहीं कोई मुसीबत आने वाली हो।

मैंने फिर से ड्राइवर से इल्तजा की कि उनको मेरी याद दिला दे।

ड्राइवर ने मुझे जलती आँखों से देखा— क्या मेरी शामत आई है जो बार-बार उनके मुँह लगूँ? लगूँ भी कैसे! ज्यादा मुँह न खुलवाओ। बस अन्दर आराम कर रहे हैं।" मैं समझ गया ओह! कमिश्नर साहब बंगाल से बैठे हैं साथ के कमरे में। उन्हें सब पता है। तुम भी इंतजार में हो। तुम्हारे पास तो अपनी सुविधा से आयेंगे। सभी छोटे बड़े का फर्क करके चलते हैं हमेशा।

ड्राइवर चला गया।

मैं हीनता से भरने लगा। पक्षी का गला सूखने लगा। बहुत मिन्नतें करने पर माली एक सूखे पत्ते पर चार छः बूँदें पानी की ले आया।

'पी पी पानी पी।' मैंने कई बार पक्षी से कहा। बड़ी मुश्किल से उसने गर्दन को उठाया।

हँ हँ हँ शिथिल दर्द सा उभरा। नहीं, पक्षी हँस रहा है। हँ हँ हँ।' पक्षी हँस रहा है। नहीं। ओह पक्षी मर रहा है। अब मैं क्या करूँ! मैं मरते हुए पक्षी को देखने लगा। किसी तरह उसे बचा लेने की युक्ति सोचने लगा। वहाँ से भाग कर। परन्तु लगा अब तक मैं बेबस हो चला हूँ। मेरे जिस्म का एक के बाद एक अंग झर झर कर जमीन पर गिरने लगा है। कभी हाथ कभी होंठ, कभी आँखें, फिर पैर और नाक

असहाय सा एक तिकोनी दीवार के सहारे सिर टिका लिया। बस नींद सी आ गयी।

क्या है? सुनायी दिया। सिर को ताना। देखा कोई नहीं था।

फिर भी मैं फुसफुसा उठा— साहब! आप चाहते थे। यह आप ले लीजिए।

फिर एक झोंका नींद का।

तो लाओ।' सख्त आवाज। सख्त। खड़े खड़े अस्त-व्यस्त बाल। उतनी ही सख्त हथेली।

मैं हड़बड़ा कर रह गया। इतना नाजुक पक्षी—इनी खरखराती आवाज सुनने का आदी नहीं था।

पक्षी उनकी सख्त हथेलियों में फड़फड़ा उठा सूँघ' एक लम्बी साँस निकली मरा रोआँ-रोआँ जड़ होकर फिर सनसना उठा।

आह!'

'बेकार है। क्या करूँ अब इस मरते हुए पक्षी का!' बड़ी बेरुखी से वापस मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं अपाहिज-सा बिलकुल भी सँभल नहीं पाया।

'धपाक' पक्षी खुरदरी कंकरीली जमीन पर जा गिरा।

मैं चीख उठा। सचमुच पक्षी जमीन पर गिरा कराह रहा था। उसने गर्दन को ऊपर उठाना—'कितनी पत्तियाँ बची हैं और जिन्दा रहने

की।'

मैंने झुक कर पंखों को दोनों हाथों में सहेज कर अपनी गोदी में भर लिया।

तभी साहब वास्तव में एक कमरे से निकले। मुझे देखा। पर अनदेखा कर दिया। उपेक्षा भाव से झट दूसरे कमरे में चले गये।

खटाक्' दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़।

अपनी ही दुनिया के सारे दरवाज़े बन्द हो गये मेरे लिए।

मैं दहशत से भर उठा।

बिल्कुल अकेला। सँकरी, लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी राह। और ऐसी ही मुड़ी-तुड़ी हुई लाश—मैं अपने हाथों में उठाये उसे लेकर चल देता हूँ जो विकृत लम्बी और भारी होती चली जाती है। हाथों में नहीं सँभलती तो अपने निर्बल कंधों पर डाल लेता हूँ। अपनी ही लाश ढोने का अहसास।

कब तलक ढोऊँगा इसे? ता उम्र? या शायद अगली पीढ़ियों तक? नहीं पता।

भविष्याक्रान्त

आज ही आया था यहाँ। नये स्टेशन पर चार्ज लिया था। बच्चे साथ नहीं थे। प्रतीक्षालय में नहा-धो लिया था। स्टेशन के एकमात्र टी-स्टाल से चाय आ गयी थी। चाय पीने के बाद ए० एस० एम० यार्ड मास्टर, बुकिंग क्लर्क सबने, अपने-अपने यहाँ खाना खाने का अनुरोध किया था। मेरी आदत है, जितना हो सके आज के जमाने में किसी पर बोझा न डाला जाये। इस दृष्टि के पीछे चंद एक और अच्छे पहलू हैं। अतः मैंने सबको किसी तरह प्यार से टाल दिया।

वैसे तो खास भूख थी भी नहीं। सोचा जब लगेगी तो निकट के किसी होटल-ढाबे से कुछ खा-पी लूंगा। इस बीच मैं सारी फाइलें रजिस्टर आदि सरसरी तौर पर देख लेना चाहता था।

तभी विश्वेश्वर ट्रेन क्लर्क हाथ जोड़े मेरे सामने आ खड़ा हुआ। बोला— बड़े बाबू खाना तो आपको मेरे साथ खाना होगा।' स्वर में गहरे तक आत्मीयता उभर रही थी।

मैं एकाएक उसे मना नहीं कर सका। कहा—"क्या नाहक परेशान होते हो और घरवालों को भी

बड़े बाबू घरवाली बच्चों के साथ बाहर गयी हुई है। अपने लिए खुद खाना बनाता हूँ। कोई सी एक सब्जी और चार रोटियाँ। थोड़ा अचार। परेशानी काहे की।'

'अच्छा शटल के बाद चलेंगे आपके क्वार्टर।

"हाँ, शटल के बाद ही। तब गाड़ियों का रश एकदम मंदा पड़ जाता है। खाने के लिए लम्बा गैप मिलता है।" पाँच नम्बर लाइन पर प्वाइंटस-मैन हरी झंडी हिला रहा था। मालगाड़ी धीरे धीरे रुक रही थी। विश्वेश्वर उधर ही बढ़ गया।

शटल के बाद हम दोनों विश्वेश्वर के क्वार्टर पहुँचे। क्वार्टर बहुत सलीके से सजा हुआ था। सब चीजें व्यवस्थित ढंग से लगी हुई थीं। इसलिए मुझे वहाँ खिड़की के पास बैठने में बहुत अच्छा लगा। विश्वेश्वर बड़ी फुर्ती से खाना बनाने में जुट गया।

जल्दी ही हम खाने की मेज पर बैठे थे। कुछ देर तक विश्वेश्वर मुझे स्टाफ और स्टेशन के कामकाज के विषय में बताता रहा।

खाने के बाद मैंने उसके परिवार के विषय में पूछा तो विश्वेश्वर ने उत्तर दिया—'ट्राई मारने गये हैं।

मैं इस लगभग नये मुहावरे का एकदम से कोई अर्थ नहीं निकाल सका। पूछा—'कैसी ट्राई?'

इस पर विश्वेश्वर जोर से खिलखिला पड़ा—'साहब, यह हमारे घर का एक चालू मुहावरा हो गया है।' वह हँसा जरूर, पर मैंने लक्ष्य किया कि इस हँसी की तरंग के साथ कहीं पीड़ा का स्वर भी उठ-बैठ रहा है।

"अब थोड़ा आराम कर लें, बड़े बाबू।' विश्वेश्वर ने एक चारपाई पर मेरे लिए चद्दर बिछा दी।

मैं चारपाई पर, सिरहाने से कुहनी अटका कर अधलेटा हो गया—हाँ विश्वेश्वर भाई आपने ट्राई वाली बात बीच में ही छोड़ दी।"

"नौकरी चाकरी के लिए ट्राई करने की बातें हैं बड़े बाबू।' विश्वेश्वर ने मूढ़ा मेरी चारपाई के निकट खींचा और उस पर बैठते हुए आगे बोला "लड़के ने इस वर्ष एम० कॉम० फाइनल की परीक्षा दी है। पंद्रह बीस रोज में रिजल्ट निकलने वाला है। जरूर पास हो जायेगा। मैं सोचता हूँ, यह ट्राई वाला प्रसंग अब जाकर शुरू होता तो ज्यादा बेहतर रहता। मगर यह तो अढ़ाई वर्ष पूर्व ही शुरू हो गया जिसने लड़के को सुखाकर रख दिया और साथ में घरवाली भी आधी रह गयी।'

'हूँ' मैंने सिरहाना ठीक करते हुए विश्वेश्वर की ओर देखा तो वह

आगे बोलने लगा—

"कुछ लोग नालायक औलाद, लापरवाह पत्नी की वजह से परेशान रहते हैं मगर यहाँ लगभग स्थिति कुछ उल्टी ही चल निकली।" विश्वम्भर के अनुसार लड़के शिशिर और घरवाली शीला के अलावा घर में दो लड़कियाँ भी हैं जो अभी छोटी हैं। वे दोनों भी समझदार हैं। सभी बच्चे पढ़ाई में अच्छे हैं। पर शिशिर बड़ा होने के नाते अधिक जिम्मेदारी महसूस करता है। अभी से उसे छोटी बहनों की फिक्र है। अढ़ाई साल पहले से ही सर्विस के लिए फार्म भरने शुरू कर दिए थे उसने। साथ में टाइप शार्टहैंड भी करता रहा। इस कार्य के लिए माँ भी उसे यथोचित प्रोत्साहित करती थी जिससे दूसरे-तीसरे रिटन टेस्ट में वह पास हो गया। इधर बी० काम० की परीक्षाएँ बिल्कुल सिर पर थीं। तभी दो दिन पहले उसे इस बात की सूचना मिली कि वह पास हो गया है और अब—परीक्षाओं के बीच की कोई तिथि थी—कि उसे दिल्ली शार्टहैंड टेस्ट में बैठना था। सहसा पूरे घर में खुशी की लहर दौड़ गयी—शिशिर भैया पास हो गये शिशिर भैया पास हो गये। लेकिन लड़का बेचारा बहुत परेशानी अनुभव कर रहा था। कहने लगा—मुझे कौन-सा पता था कि पास हो जाऊँगा और एक दिन के नोटिस पर शार्टहैंड के लिए भी बुला लिया जाऊँगा? सारी स्पीड गिरी पड़ी है।

खैर जैसे तैसे वह और उसकी माँ दिल्ली चले गये। विश्वम्भर के भाई साहब उसी विभाग में अफसर हैं, लेकिन वह उनके सामने इस विषय में ज़बान नहीं खोलना चाहता था। किन्तु शीला के पास माँ का जिगरा था। बोली—मैं कहूँगी। कौन किससे नहीं कहता? देखूँगी। आजकल के ज़माने में और भी बहुत कुछ चलता है।

इतना कहकर विश्वम्भर कुछ देर के लिए रुका। मूढ़े पर करवट बदली और फिर से बोलने लगा—

पाँचवें रोज़ जब शीला गाड़ी से उतरी तो उसका मुँह लटका हुआ था। पीछे-पीछे शिशिर भी अटैची और बिस्तरबंद घसीटता हुआ फाटक में से बाहर आ गया।

स्पष्ट रूप से कोई भी प्रश्न करना बेमानी था। उनके चेहरा पर

'काम न बनने' के उत्तर उग आये थे।

'चलिए।' शीला फुसफुसा कर यही एक शब्द बोली, और हम क्वाटर की तरफ चल दिये। विश्वेश्वर सोच रहा था, जाती बार शीला के चेहरे पर कितना कितना उत्साह फूट पड़ रहा था और वह एक ही धुन मे चहके जा रही थी—'मैंने आपको बताया नही पर मैंने आपके भाई साहब से बात कर ली थी। उन्होने यही कहा था कि शिशिर रिटन पास कर ले। आगे मैं देख लूगा।

हा शीला के इन शब्दो को तब विश्वेश्वर ने बडी मुलायमियत से धो दिया था कि वह भाई साहब से कुछ नही कहे। बच्चा जो कुछ अपने बलबूते पर करता है उसके असर से वह आगे का जीवन ठोस आत्म-सम्मान से जीता है। वगरह वगरह।

अब घर मे कदम रखते ही थकान से लदे शिशिर ने सारा सामान फर्श पर पटक दिया और लम्बी सास खीची।

इधर पत्नी ने बोझिल शब्द फर्श पर पटकने शुरू कर दिये—

हाय इतना पैसा खर्च किया। गाडियो के धक्के खाए आपके भाई साहब का सलूक हद से घटिया रहा। किसी से एक लफ्ज कहना तो दूर, हमसे बात तक नही की। जैसे उन पर बोझ बनकर आ बठे हो। हमने तो खाना तक दूसरे रिश्तेदारो के यहा से खाया। और तो और इसान पराय को भी थोडी-सी सहानुभूति ही दिखा देता है।'

देख लिया ना सहने का फल। खुद ही जल रही हो। विश्वेश्वर ने कहा तो शीला की आग मे घी पड गया।

'तो क्या करती। आजकल बिना सिफारिश के मामूली-सा काम भी नहीं होता। यहा तो मामला ही नौकरी का था। शीला की आवाज रुआंसी हो आयी। उसमे क्षुब्धता की मात्रा अधिक थी। 'यह है आपके भाई साहब। मरवा दिया। किसी और को पकडते या कुछ देते दिलाते की बात करते तो जरूर काम बन जाता।'

'अपना शिशिर कौन-सा बडा हो गया है। लग जायेगी नौकरी। विश्वेश्वर ने उसे शात करने का यत्न किया।

आप कौन-सी दुनिया मे रहते हैं? आजकल नौकरी मिलना

मिलन के बराबर हो गया है। अगर सचमुच मुझे कोई यकीन दिलाद कि बच्चे को नौकरी मिल जायगी तो मैं इससे फार्म भरवाना बन्द कर दूँ। पहले ताली स एम० काम० करने दूँ। कितना पैसा फूँक रहा है फार्मों पर। घर आ सभी का यही ड ग्याना रहता है कि बच्चा नौकरी ढूढ़न ढूढ़न आवारा न हो जाये।

अपना बच्चा लायक होना चाहिए। बस। 'बस' शब्द पर विश्वेश्वर ने खास तौर पर जोर दिया। जैसे इस तरह कहने से सारी बहस वहीं की वहीं खत्म हो जायगी।

लेकिन जल्द ही विश्वेश्वर ने महसूस किया कि यह बहस तो सांजिदगी चलने वाली बहस थी। चाचा जी की मरनी पर यही टापिक। रानी के जन्म दिन का फंक्शन हुआ तो यही चर्चा। हर कहीं यह विषय जैसे आकाश में पुच्छल तारे की मानिंद उनके आँगन में आ गिरता। पहले फुस फुस की ध्वनि पैदा करता। फिर धमाके शुरू हो जाते कि भाई साहब ने सगे भतीजे की नौकरी पर लात मार दी।

भांजे की शादी में वे मेरठ गये तो वहाँ भी यही बात। साले साहब का कहना था कि आपके भाई साहब आदर्शवादी हैं। वह भाई भतीजावाद के विरुद्ध आवाज खड़ी कर रहे हैं। इससे उनका नाम भी हुआ है।

दीदी ने कहा— कोरा यश बटोरने के पीछे बेचारे शिशिर का कैरियर चौपट करके रख दिया। देख लेती, अगर शिशिर की जगह इनका अपना छोटा लड़का होता।'

जीजीजी ने भी पूरी बौखलाहट व्यक्त की— देख लिये हैं, सारे उसूल। चाहते तो हमारे लड़कों की भी मदद कर सकते थे। लेकिन असलियत यही है कि किसी को हँसता खेलता, फलता फूलता नहीं देखना चाहते।

दीदी दोबारा बोलीं— कहीं कोई इनसे आगे न निकल जाय और ठाठ से खाये पिये यह इनसे बर्दाश्त कहाँ होता है। अफसर क्या बन गये

दीदी के शब्द पूरे नहीं हो पाये थे कि तभी वहाँ बड़ा भतीजा नितिन आ पहुँचा। आते ही घोषणा की—'डैडी नहीं आ पायेंगे। उनके

सिर में चक्कर आ रहे हैं। फिर आज ही शाम कानपुर भी जाना है। डाक्टर ने रेस्ट करने को कहा है।'

सबने एक-दूसरे की ओर देखा जैसे एक-दूसरे से तराजू तान कर कह रहे हों कि तौल कर देखें कि नितिन की बातों का सच का पलड़ा भारी है, अथवा झूठ वाला पलड़ा।

सबको चुप देखकर नितिन दीदी में सवालिया हुआ—'बुआ जी! मेरे लायक जो-जो काम हों बता दीजिये। मुश्किल में आधे दिन की छुट्टी मिली है।'

सारे काम तो शिशिर सँभाले हुए हैं।' उत्तर पत्नी ने ही दिया, यदि तुम्हारी तरह उसकी भी नौकरी लग गयी होती तो उसे भी कहाँ फुरसत होती और अगर कहीं अफसर लग गया होता, तो क्या इस शादी में आता?'

सुनकर एक बार तो सबके चेहरे फक पड़ गये। यह तो युद्ध क्षेत्र में फेंका गया विस्फोटक हथियार जैसा था।

विश्वेश्वर अभी तक कुछ भी नहीं बोला था। उसे लगा इस तरह की झकझक का कहीं अंत नहीं होगा। इसलिए चिल्लाकर पत्नी को झिड़क दिया—'बकवास बंद करो। अपने बराबर वालों में बात की जाती है।'

इस पर नितिन बिगड़ उठा—'आप हम घटिया छोटा समझते हैं!'

'नहीं, तुम छोटे हो' विश्वेश्वर ने उसकी आयु का लक्ष्य कर कहा।

किन्तु वह और और अनाप शनाप बोलता, वहाँ से उठकर निकल गया, कि डैडी अफसर हैं तो किसी का नहीं भाते। हम किसी से छोटे नहीं। देखेंगे—अब शिशिर की नौकरी कैसे लगती है।'

तब से हमने तौबा कर ली, किसी रिश्तेदार के सुख-दुःख में शरीक होने नहीं जाते। अपनी या भाई साहब की हँसी उड़वाने, लड़ाई झगड़े से बेहतर है कि बिरादरी से कटकर रह लो। क्यों बड़े बाबू?"

विश्वेश्वर उठ खड़ा हुआ, अब गाड़ियों का समय होने वाला है। मैंने आपको आराम ही नहीं करने दिया।'

'मैं तो बल्कि लेटा रहा। आप ही बैठे रह गये विश्वेश्वर भाई! चलो मैं भी चलता हूँ।"

उसने क्वाटर का ताला लगाया तो मैंने विश्वेश्वर को तसल्ली दी, 'ज्यादा चिंता मत किया करो। यह तो सबकी जिंदगी के मसले हैं। लगे ही रहते हैं। मस्त रहा करो।"

'मैं तो ऐसे ही मानता हूँ, बड़े बाबू, पर शिशिर है कि तब से जब अपने अन्दर दैत्य की शक्ति भरकर पागल-सा बन गया है कि बिना किसी की सिफारिश के जल्दी ही कहीं लगकर ताऊजी को बता देगा कि दुनिया में वे ही सब कुछ नहीं हैं। हर विभाग के फार्म भरता चला आ रहा है। दूसरा वह आसपास गली मोहल्ले में नजर दौड़ाये रहता है। अपने साथ के पढ़े लिखे युवकों को देख-देखकर घुलता रहता है कि देखो यह लड़का इतना पढ़ा लिखा है। इसको भी अभी नौकरी नहीं लगी उसकी भी नौकरी नहीं लगी। ये बेचारे बिना काम के थोड़ा इधर-उधर घूम आते हैं तो इनके मां बाप इनसे नफरत करने लगते हैं। कहते हैं हमारी जान को आफत है। घर में बैठे बैठे रोटियाँ तोड़ते हैं। फिर निकल जाते हैं आवारागर्दी करने। लम्बे समय तक इन्हें सगे माँ-बाप भी नहीं सह पाते। दरअसल इसमें किसी का कसूर नहीं होता।

मैं शिशिर की तकलीफ को समझता हूँ जो वक्त से कुछ पहले ही आरम्भ हो गयी। उसे तसल्ली देने के लिए कहता हूँ उसे फिक्र करने की जरूरत नहीं। कुछ पैसे तो हमें कस्बे के मकान के किराये के भी आ जाते हैं। मगर बात है कि एक तरफ उसकी पढ़ाई की बड़ी-बड़ी पोथियाँ हैं दूसरी ओर कंपीटीशन मास्टर जैसे भारी भरकम ग्रंथ। इन दोनों के बीच पिसकर रह गया है मेरा शिशिर। देखिये अब की फिर ट्राइ मारने गया है। लगता है इस बार जरूर सफल हो जायेगा।'

विश्वेश्वर फिर हँसा। वही रुदन की खनक भरी हँसी।

मैंने मन ही मन विश्वेश्वर तथा उसके परिवार की सराहना की। फिर काम में व्यस्त हो गया।

इस घटना के कोई बारहवें रोज सुबह की गाड़ी के बाद विश्वेश्वर मेरे पास आया। वह बहुत खुश था। उसके हाथ में अखबार देखकर मैं समझ गया जरूर रिजल्ट निकला है। विश्वेश्वर को अपने पास बैठाते हुए पूछा— कहिए विश्वेश्वर भाई! लगता है शिशिर के पास

होने का समाचार है !"

"जी हा बडे बाबू ! मब बडे भाइयो की शुभकामनाएँ है। शिशिर ने फस्ट डिवीजन ली है।'

"बहुत बहुत बधाई हो।' मैंने गमजाशी म उसका हाथ छुआ।

"और आज ही शाम की गाडी स सब वच्चे लौट रहे हैं। कितना खुश होगा शिशिर ! उस तो ध्यान भी नही होगा कि अब की रिजल्ट इतनी जल्दी निकल आया है।"

शाम को मैंने भी खास तौर स गाडी अटेण्ड की। गाडी रुकी। शीला बेहाल-सी बाहर निकली। घबराये स्वर में विश्वेश्वर स कहा—"जल्दी स अदर चलिए। शिशिर की तबीयत रास्त मे खराब हो गयी। दो-तीन उल्टिया भी हुई ह।'

मैं और विश्वेश्वर अदर गये। दोनो ने शिशिर को सहारा दिया, और उसे बाहर ले आये। बाहर आते ही, स्टाफ के अन्य लोगो ने उसे सँभाल लिया।

मैं थोडा अलग हुआ तो देखा, जैसे पतली पतली सलाखो वाली कोई ट्राली हड्डियो का ढाँचा लिए जा रही है। मैं पीछे-पीछे चलने लगा।

विश्वेश्वर ने धीरे स अखबार को शिशिर के हाथ म पकडाते हुए कहा—' बेटे, तुम फस्ट डिवीजन म पास हुए हो।'

किसी तरह एक हाथ स अखबार पकडकर शिशिर दूसरे हाथ को पेट की जेब म ले गया। एक लिफाफा निकालते हुए उसने कहा—"इसम रहा मेरा अपाइंटमेंट लेटर।'

दोनो ही हाथ अपनी विजय को समेटने म बडौस हो चले थे। मुस्कान की चेष्टा की तो जैसे चेहरे पर सर्पीली नाडियाँ उभर आयी। मुझसे और नही देखा गया। थोडा पीछे हटा तो स्टाफ का ही कोई आदमी बुदबुदा रहा था—' खाने को तो कुछ मिलता नहीं दिन पर इतनी बडी मेहनत। अब यह लडका बचेगा नहीं।

मैंने अपने को झटका दिया और दूसरी दिशा म चल दिया, डॉक्टर बुलाने।

प्रहार

थका माँदा। परेशान हालत। दिन-भर की फिजूल सी दौड़ धूप। कई रोज से प्रियेश हेड क्वार्टर के चक्कर में डाल रहा है, मारा मारा।

दफ्तर बंद होने के साथ ही अपने अंदर और अधिक रिक्तता अनुभव करने लगता है। हर रोज की तरह आज भी अपने उसी ज्ञानीरन को समेटता नयतरंग में आ बैठा था। बेदम।

कुछ लोग मसाला डोसा, वैफन, नमकीन, चाय, कॉफी, प्रेमिकाओं या दोस्तों के साथ मन लगाये हुए आड़े तिरछे बैठे थे। कुछ एक थाने का पूरा थान मेज पर फैलाये थे। उसके लिए पिछले दिनों की तरह कुल मिलाकर वातावरण घुटा घुटा सा था जिसे वह सिगरेट के धुएँ से और ज्यादा घना कर उसी में गुम होने की कोशिश में मशगूल था।

'प्रियेश!' किसी ने आवाज दी थी। धीमे से रेंगती आवाज उस तक आ पहुँची थी—प्रियेश! उसने जान बूझकर अनसुनी कर दी थी अपने नाम से जुड़ी वह आवाज।

यहाँ-वहाँ सभी दफ्तर में आवाजें उभरती हैं। पहले उसे कुछ रहस्यमयी और फिर दुरूह लगती है—क्या प्रियेश! क्या प्रोग्रेस है अब तक? क्या बना? यह सब हुआ तो आखिर हुआ कैसे? सुना है विभागीय जाँच के बाद मामला पुलिस को जायेगा। किसी मंत्री वंत्री को पकड़ो ना। आखिर इन्हीं आवाजों से बचने के लिए उसने अपने शहर में तो दफ्तर जाना ही स्थगित कर रखा था, लेकिन यहाँ आकर हेड ऑफिस

तो जाना ही पडता है। इसलिए यहाँ भी जान-पहचान के सभी लोगों को केस का पता चल चुका है।

सब उसकी दयानतदारी से वाकिफ हैं। जाली रसीदें किसने बनाई। हस्ताक्षर उसके मिलते नहीं। फिर भी केन्द्र में सिर्फ वही आ अटका है—प्रियेश।

"प्रियेश!" जब की आवाज के साथ किसी ने कंधे पर धीरे से हाथ रख दिया था। गौर किया तो जनार्दन था नाटय कलाकार। थोड़ी लंबी दाढ़ी और बालों तक पहुँचती मूछें। उसी के कारण शायद चेहरा गोल-मटोल लगता था। 'इधर आओ एक साहब से मिलवायें।" वह उसका हाथ पकड़ कर पीछे के केबिन की तरफ ले गया।

"आप हैं प्रियेश और आप हैं प्रदीप जी। हैं ना मिलते जुलते एक-सी राशि वाले नाम।" ऐसे ही जनार्दन अपने लंबे दांत निकाल कर सिर्फ हँसने के लिए हँसा।

प्रदीप तकरीबन खाना खा चुके थे। थाली के किनारे काफी सारी हड्डियों के टुकड़े सिमट पड़े थे। 'ओह आप लोग खाना खायेंगे? वैजिटेरियन या नॉन वैजिटेरियन?" जिंदादिल आवाज थी प्रदीप की।

'कुछ भी नहीं। मैं तो सिर्फ चाय पीने को, किसी दोस्त के साथ आया था। वह चला गया तो यह दिख गये। अब खाना तो हम लोग घर जाकर ही खायेंगे। आपने तो खा लिया। वरना हमारे साथ चलकर खाते।" जनार्दन ने अपनी दाढ़ी को मलते हुए ऐसे कहा जैसे यहाँ भी किसी नाटक की विशेष भूमिका प्रस्तुत कर रहा हो।

नॉन वैजिटेरियन बतवाओ तो कल ही हाजिर हो जाऊँ। पर घर पर कुछ अलग ही तफरीह होती है। मिसेस हमारी तो साथ देती नहीं। इसलिए यकलत फ़क्लत होटल का सहारा लेना पड़ता है।' प्रदीप ने कंधे को थोड़ा पीछे खींचते हुए जोड़ा, 'तुम एक कलाकार हो। एक शाम तुम्हारे साथ गुजार कर खूब रंग जमेगा। क्या!"

हड्रेड परसेंट। कल का प्रोमिस। पक्की नहीं ना!

'ओ के। और वाई दि वे मेरे नायक!' खिलखिलाती आवाज थी प्रदीप की।

यस मर । सिर्फ एक ।' जनादन का हाथ हरी चिकनी मेज के धरातल पर फिसलता हुआ प्रदीप के हाथ के करीब जा पहुँचा "जहाँ तक मेरा ख्याल कहता है, आपकी मिसेस यानी भाभी जी एम आर टी एम में एकाउटस में हैं ?"

'करेक्ट शी इज ए आफिसर नाउ ।"

तब फिर सुन लीजिए, खिदमत," जनादन ने हाथ उठा कर प्रियश के ऊँचे कंधे पर रखते हुए कहा "इस भोले पंछी को ख्वाहमख्वाह फँसाया जा रहा है । पस कोई डकार गया, इलजाम इसके मत्थे । अगर कोई ध्यान दे तो मामला बच्चे तक की समझ म आ सकता है । मगर

करैक्ट करैक्ट मिस्टर कलाकार । समझ गया । मरा मतलब है कुछ भी नही समझा । मैं समझ कर करूँगा भी क्या ! जिनके समझने का है उन्हें ही समझाइए ना । आप तो घर जानते है । मुझे कहीं और आग जाना है । करैक्ट ।"

दिमाग कुछ कच्चा कच्चा-सा होने लगा था प्रियश का । जीवन के पिछडे कुछ अशो का खण्डन की एक नाकामयाब कोशिश, वजिटेरियन नॉन वजिटेरियन । लेकिन ठीक इन्ही क्षणो, पूरे उलझे हुए माहौल म फुसत कहा थी कही कोई सगति बठा पाने की ! भूत की तो कौन सोचे इस समय यहा भविष्य ही दाँव पर लगा था ।

प्रियेश अपने लबे कद के बावजूद गदन झुकाये किसी बौने की तरह अपने को जनादन से बँधा हुआ अनुभव करता कुछ उलझी गलियाँ और चौराहो का पार कर रहा था अपने को उबार पाने की क्षीण आशा के साथ । जनादन कुछ सोचता-सा रुक गया ।

सामने एक छोटा-सा घर था । बाहर उसी अनुपात में छोटा-सा लॉन । हरी-हरी घास । आसपास खिले-अधखिले नील लाल फूल । दीवार के सहारे सस्ती पीले फूलो से लदी वगेन वेलिया । ऐसे ही किसी जोधपुर के छोटे बगीचे का ध्यान आ गया, प्रियश के अवचेतन म ।

हाँ, यही घर है जनादन फाटक खोल रहा था 'सब जानते है हम, पूरे शहर म । गाह-बगाह बारी-बारी से हम इन बडे लोगो को आयोजना का अध्यक्ष वगैरह बनाते रहते हैं । कामिनीजी को भी बनाया

है।" खास उत्साह से उसने काल बैल पर अँगुली रख दी।

कामिनी पुजारी

प्रदीप पुजारी

छोट वल्ब के नीचे नेम प्लेट पर प्रियेश की नजर कुछ क्षणा के लिए जैसे ठिठक गयी। 'मरवा न्दिया जैसा भाव चेहरे पर उभरा। वैजिटेरियन नॉन वजिटेरियन। फिर अपने पर ही खीज उठा और हँस भी दिया अपनी सोच पर—'ऊँह वोसा कामिनिया।'

दरवाजा खुला—"कौन! आइए!" एकाएक न पहचान पाने का भाव।

'मैं जनादन हूँ मैडम! नमस्कार और यह मेर एक अच्छे मित्र! साहब से होटल म मिल कर आ रहे हैं। आप उन्हें मीट नही खाने देती।'

'मैं कौन हाती हूँ रोकन वाली!" पीली साडी का गदन क पीछे स लपटते हुए कामिनी बोली, "कोई किसी को क्या रोके? होटल म खायें या घर पर। चाहें तो बना कर भी दे सकती हूँ। मुझे खास शौक नही था। बिल्कुल छोड दिया। व मुझे इसिन्ट नही करते।

'साहब कल हमारे यहाँ खाने पर आयेंगे। आप भी आइये। आपकी मनपसद आइटम भी बन जायेगी।'

"क्या न्योता देन के लिए कष्ट किया? उन्ही से कह देत तो क्या मैं नही आती! आप हैं तो बैठेंगे नही!"

प्रियेश का दम घुटन लगा। वही कामिनी—वजिटेरियन नान वैजिटेरियन।

'आप ह मि० प्रियश" अदर सोफे पर बैठते हुए जनादन ठीक स परिचय देन लगा। फिर प्रियश को गुमसुम खडा देखकर बोला—"बैठो यार।"

कामिनी ने पहली बार उधर गौर किया। हाथ अनायास स्विच पर चला गया। 'खट' के साथ टयूब लाइट न पूर वातावरण को विस्तार द दिया जैसे।

और इधर प्रियेश सोफे पर सिकुड-सा गया, जैस इतनी तज रोशनी

मे कही से नंगा न दिखने लगे।

"ओह आप !" भरसक प्रयत्न कर कामिनी तटस्थ स्वर में बोली, "जानती हूँ प्रियेश जी को।"

गुड। जनार्दन वापस उत्साह से भर गया, "जानती होंगी। आप भी तो जोधपुर रह चुकी हैं।

'हां, हमारे साथ ही पढ़ते थे आप।" एक उठता बैठता स्वर।

तब तो खूब रही। इनकी एक परेशानी है।" जनार्दन ने सोफे के हत्थे पर अँगुलियां नचाते हुए कहा।

वह भी समझ गयी अब" कामिनी ने आत्मविश्वास के साथ कहा, हमारे आहूजा साहब लंबी छुट्टी पर गये हैं। उनका काम भी मुझे ही देखना पड़ रहा है। यहां तो बाबू लोग कागज, ठीक से ऊपर तक पहुँचने नहीं देते। हर मामूली केस में भी मीन-मेख लगाकर अपनी कला का प्रदर्शन करते रहते हैं। खैर कल ही मैंने सारे कागज देख लिये थे। पूरा मामला समझ गयी हूँ। इन्हें तो बिल्कुल भी घबराने की जरूरत नहीं। एक मिनट—आपके लिए चाय कामिनी किसी को आवाज देने के लिए मुड़ी।

'नहीं ' प्रियेश की जबान खुली और साथ ही किसी दबे दर्द में लड़खड़ा कर रह गयी।

'नहीं मैडम। प्रियेश की बात का पूरा करने का दायित्व जनार्दन ने ले लिया आप कष्ट नहीं करें अब जल्द फिर मुलाकात होगी।' वह खड़ा होने के लिए थोड़ा हिला 'बस आप तो इनके कागज रख लीजिए।

आवश्यकता नहीं पड़ेगी। फिर भी अपनी तसल्ली के लिए बेशक छोड़ जायें। लाइए।' कामिनी ने हाथ बढ़ा लिया। जैसे गुजरे जमाने की दोस्ती का हाथ।

प्रियेश ने उठकर जस-तस तीन चार कागज, अपील रसीद की फोटो स्टेट वगैरह, आगे बढ़कर सँभलवा दी। फिर नहीं रुका वहाँ। अपने को झटका-सा देते हुए कमरे से बाहर आ गया।

जनार्दन ने धीरे से प्रियेश का अनुसरण किया— अच्छा तो आज्ञा हो मैडम, कहते हुए आगे मुड़ा। जैसे प्रियेश के व्यवहार के लिए क्षमा

भोग रहा हो।

प्रियेश तेजी से कुछ आगे बढ़ गया था। एकदम मौन।

"अब तो खुश हो पट्ठे!" जनार्दन ने [illegible] को सामने से बचाते हुए कहा, "देखा कितनी जल्दी और आसानी से काम बन गया। अपने प्रति ही की तरह कितने कम दिन और [illegible] अनुदार [illegible] हो। लगता है, कल डिनर पर और भी असर डालोगी [illegible]"

प्रियेश कुछ नहीं बोला।

"हो न हो यार, लगता है तुम्हारे लिए तो कुछ ज्यादा ही लाभदायक रहे हैं इसके दिन मे। साथ जो पटते थे। और कोई दिन की खास बात रही तो वह भी बता दो। यारों से क्या छिपाना!" जनार्दन नाटकीय ढंग से हँसे जा रहा था। साथ ही रह-रह कर प्रियेश के कंधों पर हाथ से झटके पर झटका भी देता जा रहा था।

पर जैसे किसी पत्थर पर हाथ पड़-पड़ कर लौट जाता हो जनार्दन का। यह उसने थोड़ी देर के बाद अनुभव किया जब प्रियेश लगभग लड़खड़ाता-सा एक पुलिया का सहारा लेता हुआ उसी पर बैठ गया। जैसे कई-कई दिनों की थकावट का बोझ एकलख्त सिर पर आ गिरा हो।

जनार्दन उसके ऐसे हाव भाव देखकर घबरा गया। "क्या हो गया भई! अब तो तुम्हें खूब-खूब खुश नजर आना चाहिए ना!"

फिर एक लंबा मौन जिसे तोड़ना अब की जनार्दन को भी अपने बूते से बाहर की बात लगने लगी।

कुछ मिनट और गुजर गए। जनार्दन ने गौर किया, प्रियेश के होठ धीरे धीरे हिल रहे हैं—"पहले तो यह कामिनी मीट, मछली, अंडे खाने लगी थी। अब फिर छोड़ दिया।"

"अपनी मर्जी की बादशाह है। बीस बार खाए सौ बार छोड़े। तुमसे मतलब! तुम्हारा काम हो गया। छुट्टी।"

"नहीं यह बात नहीं—" प्रियेश जैसे कराह कर चुप हो गया।

"तो फिर क्या बात है?" जनार्दन ने पूछा।

"बस यही तो मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ। तुमने अभी कहा था ना,

दोस्तो से कुछ नही छिपाते, तो सुनो।"

जनार्दन प्रियेश के साथ थोडा और सटकर बैठ गया— हूँ।'

प्रियेश धीरे धीरे ऐसे बोलने लगा, जैसे अपने अन्दर के अँधेरे में से कुछ कुरेद कर बाहर रोशनी म रखने को तत्पर हो रहा हो।

कामिनी मुझे शुरू से ही एक बहुत अच्छी लडकी लगती थी। इत्तफाक से हमारे घरवालो ने यही हमारा सबंध पक्का कर दिया। मैं मन ही मन बहुत खुश रहने लगा था।

एक दिन छोटा भाई नई आने वाली भाभी को देखने की उत्सुकता लिये चूडियो का नाप लेने के बहाने इनके घर चला गया। वापस आकर जो कुछ उसने बताया, उससे हमारे पूरे घर में कुहराम मच गया। खास तौर से मा ने तो हाय-तौबा शुरू कर दी— हाय मैं ऐसी बहू को कैसे घर ला सकती हूँ! मैं तो घर को भ्रष्ट नही होने दूँगी।'

दूसरे दिन उन्होने कामिनी की मम्मी को बुलवा भेजा। उन्हें बेइज्जत सा किया— यह रिश्ता हमे नही करना। आपने हमे धोखा दिया' ऐसे ही वाक्यो से माता जी ने उन्हें कोसा।

कामिनी की मम्मी सब कुछ सुनती रही। फिर बडे संयत तथा विनम्र स्वर म कुछ तथ्यात्मक विवरण देती हुई चली गयी कि अंतिम फैसला हम कर लें। उन्होने कहा, बहन जी, वैसे धोखे वाली कोई बात हमने की नहीं। हमारे यहा सब सदा नॉन वेजिटेरियन बनता है। कामिनी नही खाती। बहुत जोर लगाओ तो भी नही खाती। अब की भाई उसे खिलाने के लिए बोला— खाले ले खा ले अब तो। आगे तो खा नही पाओगी। तरसोगी।

'लाओ तब तो मैं जरूर खाया करूँगी जब तक मन करेगा। जब दिल करेगा छोड़दूगी।' नादान लडकी। और खाने बैठ गयी। फिर दो एक दफा यह कर भी मँगवाया। मैंने सोचा कि यदि कोई छिपी हुई चाह जाग उठी है तो पूरी कर लेने दो। आगे तो खायगी नही। थोडा शरारती है। चिढ़ा रही है तो हम इसमे क्या उलझें।

आप हम तो न उलझाएँ। मेरी माता जी का लहजा सख्त हो गया था।

कामिनी की मम्मी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया—'बहन जी शादी के बाद तो सब लडकियाँ ससुराल के रंग में रंग जाती हैं। आप स्वयं समझदार हैं। सारा शहर जानता है कि कामिनी कितनी टलेंटिड है। कम्पीटीशन्स की तैयारी में लगी हुई है। आगे से आगे पढना चाहती है। बस हम ही जरा भार-मुक्त होना चाहते थे।

'ठीक है फिर,' माता जी ने उन्हें जैसे जाने का संकेत किया, 'हम सोच कर आपको सूचित कर देंगे।'

घर पर हम सब के बीच तीन-चार रोज तक चख चख चलती रही। मैं तो किसी सूरत में कामिनी जैसी सुन्दर प्रतिभासम्पन्न लडकी को खोना नहीं चाहता था। मुझे तो बार बार ऐसा लगने लगा था कि सभी अभिन्न यहां तक कि घर वाले मुझसे जैसे ईर्ष्या करने लगे हैं। अत मैं यह कहता हुआ कि एक बार मैं स्वयं कामिनी से मिलूं। उसे समझाऊं। और यदि वह आइन्दा मीटिंग में आने का वचन दे तो रिश्ता मन्जूर कर लिया जायगा।'

इतना कहकर प्रियेश चुप हो गया।

"फिर क्या हुआ?" जनार्दन ने उससे पूछा जैसे कोई बच्चा कहानी के जरा रुकते ही पूछता है—हाँ फिर आगे।

प्रियेश ने एक गहरी साँस के साथ अँगडाई ली—"कामिनी ने बिल्कुल यही कहा था जो, जो मेरा मतलब मेरा मतलब जो अभी थोडी देर पहले हम दोनों के सामने कहा था, कोई किसी को क्या रोके।'

फिर कुछ देर का मौन। तभी उसी रास्ते से दूर से एक बस आती दिखायी दी। प्रियेश उधर ही गौर से देखने लगा। बस के ऊपर बोर्ड पर "जोधपुर' लिखा था। प्रियेश ने हाथ के इशारे से उसे रोका। जाह थी।

प्रियेश बडे उतावलेपन के आलम में उसमें चढ गया।

"कुलवंत के यहां मेरा थोडा सामान रखा है। कभी भी भिजवा देना। मेहरबानी होगी दोस्त।"

लाल तरंगें

टप टप ।

मेरी दायीं हथेली में लहू चू रहा है, जिसे मैं अपने बायें हाथ से थामे हुए हूँ ।

'हम अभी आते हैं,' गोली चलने से पूर्व मेरे दो सहपाठियों का शोर दूर से सुनायी दिया था । इससे आगे के शब्द वादियों में खो गये थे । मुझ अकेले को इतने बड़े दस्ते से घिरा हुआ देखकर वे फौरन मदद कर सकने में असमर्थ थे और तेजी से भाग गये थे । शायद दोबारा पूरे दल-बल सहित आने के लिए ।

मन-मन पहले दो गोलियाँ इन लोगों ने उधर ही दाग दी थीं जिधर से आवाज हुई थी । ये गोलियाँ हवा में खाली गयी थीं ।

'कौन थे यह हरामी की औलाद !' इस गर्जना के साथ ही पिस्तौल का मुँह मेरी तरफ घूम गया था ।

'नहीं-नहीं ।' मैंने प्रार्थना के स्वर में हाथ उठाकर उन्हें रोका था ।

हूँ । एक भद्दी गाली देकर वे थोड़ी देर के लिए रुक गये थे । फिर मुश्किल से एक-दो मिनट का संवाद भर और उनके बीच हुआ था । आखिर एक बार फिर दहशत उगलती हुई गन की आवाज गूँज गयी थी और उसी के साथ फिर वो दहलाने वाले कहकहे बुलन्द हुए थे । फिर भारी जूतों की आवाज दूर-दूर फैलती चली गयी थी ।

उन सबके वहाँ से हटते ही माहौल में एकलख्त तब्दीली आ गयी थी ।

अब मैं स्वतंत्र था, और नितांत अकेला। कुछ भी करने के लिए या सोचने के लिए स्वतंत्र। मगर कैसी स्वतंत्रता ? यह तो स्वतंत्रता की एक अभिशप्त स्थिति थी, जिसमें हम नामौजूद लोगों को गालियों से धुन सकते हैं। या फिर अपने-आप को कोसते हुए चबाते रहते हैं।

हमें इस तरह की आजादी बख्शने वाले बिल्कुल बेफिक्र तबियत के बादशाह होते हैं। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि मुफ्त में लूटे हुए माल की तरह मनचाही आजादी का आनन्द भी केवल वही लूट सकते हैं।

नहीं कह सकता यह सब मैंने उसी वक्त सोचा था अथवा बाद में।

टप टप ! लहू के जमीन पर गिरने का अहसास।

उस वक्त पहले तो मैं पीड़ा की प्रखरता को नापने के लिए अपनी दोनों आंखों को बार-बार हथेली पर गड़ाता रहा था लेकिन जख्म की गहराई अनदेखी ही रह जाती। कारण खून की परतों ने समूची हथेली को हर जगह से ढक रखा था।

फिर टप टप ! लाल बूंदाबांदी।

तब उधर से ध्यान हटाने के लिए अपनी दृष्टि को जमीन से उठाकर आसमान तक ले गया था। वहां छोटे-छोटे कुछ पंछी अब भी उड़ रहे थे। पेड़ों से टकरा टकरा पत्ते झर रहे थे। चारों ओर छोटी छोटी पहाड़ियां शान्तिपूर्वक दुधारी सुबह की खुमारी में डूब गयी थीं।

लेकिन इसमें चंद मिनट पहले सब जड़ चेतन दहल गया था। धन ! गोली की आवाज। कई कंकर पहाड़ियों से नीचे लुढ़क आये थे। परिन्दे कई कलाबाजी में छलांगें मार गये थे ऊपर आसमां की जानिब। समग्र वातावरण दहशत से नहा उठा था।

तब लगा था दर्द हथेली में नहीं मस्तिष्क में आकर बैठ गया है किसी ढीठ बाज की तरह। जाने भगाने पर उड़ना नहीं ।

फिर सहसा मैं एक घायल पंछी की मानिन्द फड़फड़ाता हुआ शहर-माहर में आर्मी अस्पताल फाटक के नाके जा पहुंचा। फाटक पर लहू का निशान जमाता हुआ अन्दर दाखिल हो गया। यह एक सिविल सर्जन का आवास था।

सुबह-सवेरे, अंधेरे को चीरती चंद चमकीली किरणें। लाल-लाल

नपटे। पुजारी अग्नि प्रज्वलित किये है। मन्त्रोच्चारण की ध्वनि—ऊ भूभव स्व प्रचोदयात। स्वाहा। स्व म स्वाहा तक पहुचते-पहुचते स्वर जसे हाहाकार कर उठता है और श्रोता म विलीन हो जाता है।

दूसरी तरफ नौकर गलरी म झाड पोछ रहा है। परदे व छल्ले राड पर 'पटाख पटाख' बज रहे है। सब कोई अपने प्रात धम म व्यस्त है।

मेरी हथेली की नसें 'फटर फटर' करती हुई बज रही है। टप-टप। लाल लाल कुछ कतर नीले बैंगनी फर्श म एक नया रग भर रहे हैं।

टाँय टाँय' तोता पिंजरे म फडफडाता है। शायद मेरी हथेली पर उसकी नज़र पड गयी है। डरकर चीख उठा है— टाय टाय। फड़ फड़, पंखो के वजन पजो के लोहे से टकराने स बँगले के तमाम दरख्तो के पत्ते थरथरा उठे है। समूचा बँगला जसे एकबारगी हिल गया है। लेकिन फिर भी किसी ने नहीं देखा है मेरी ओर।

एक सोच थोडी सी ऊपर की ओर उभर आयी है—अगर कोई और वक्त होता तो ऐसे मौके का फायदा उठाता। चद कीमती चीज़ें उठाकर रफूचक्कर हो जाता। इस प्रकार अपने लुट जाने और साथ ही उपेक्षित होने का बदला यहीं म ले लेता। लेकिन जानता हूँ यह एकदम खोखली सोच है। इस वक्त तो मुझे एक नायक डाक्टर की दरकार है। मैं गिरते गिरते बचा हूँ।

स्वाहा के साथ साथ अब की मेरे मुह न हा हा हाय जसा कोई स्वर जोड दिया था। तब पुजारी उठा था अपने लम्बे वस्त्रो को झाडता हुआ। मन सम्पन्न हो गया। उसने मेरी ओर देखा। हाथ उठाकर हैलो किया या आशीर्वाद दिया। मेरा गला सूख रहा था। रँगी हुई हथेली से उस डाक्टर को बुलाने का इशारा किया। वह राम राम जसा कुछ बुदबुदाता हुआ गलरी पार कर गया।

डाक्टर अपने सुबह वाले बिल्कुल सही अदाज़ म आया था। सामो इन्तज़ार करने के बाद। नाइट गाउन म। नाक पीनी डाली लापरवाही से फश की ओर घूर रही थी। अलसाई हुई आँखें। नींद नाक म बन्द थी मेरा।

अरे सुम! यह मेरी जानिब मुख़ातिब हुआ। शुक्र है। सुम पहचान

गया, एसा लगा था। मेरे बहुत से सहपाठी उसी सिविल लाइन एरिया म रहत हैं। इसीलिए अक्सर यहाँ वहा स राहगुजर होती है।

"डाक्टर' 'र' मेरे मुह स नहीं निकल सका। और मैंने हथेली उनकी ओर बढा दी।

ओह, यह ता बड़ी मामूली चोट है। नौजवान लोग घबरात नहीं।

सहसा उनकी नजर, फश पर बने, जगह जगह खून के कतरा पर पड़ी और वह उबल पड—"ओए महशिए! सफाई का ध्यान रख। अब की नौकर दौड़ा आया।

फिर वे मुझे वाशबेसन के पास ले गये। इतमीनान से चाय की एक चुस्की ली। मग को ऊपर शैल्फ पर रखा। टांटी खोलकर मेरा हाथ नीचे रख दिया। दखने लगे, गुलाबी रग पाट म झिलमिल करने लगा था।

'हूँ गोली लगी है!" पहली बार जैसे गौर से मुआइना किया उन्होंने। आखें मली—"कैसे हुआ यह सब?

मैंने भी पहली बार परखा—हथेली के बीचोंबीच कारतूस का छर्रा स्पष्ट रूप से चमकने लगा था।

उन्होंने चाय की आखिरी चुस्की ली। खाली मग से मेरी हथेली पर दबाव डाला।

'उई आयी!" मैं कराह उठा। लगा था शायद इस दबाव से गोली बाहर आ लुढकेगी और मैं झट से उसे उठा लूगा। सोच नहीं पाया क्यो? खेलन के लिए? या कि उन पुलिस वालो की करतूत को जिस-तिस के सामन छर्रा दिखाकर विज्ञापित करने हेतु।

मगर देखा, गोली अपने पूर्वस्थान पर ज्यो की त्यो चिपकी पड़ी है। अलबत्ता पानी पडने से खून का रग कुछ मुलायम जरूर पड गया है।

"इसे निकालन के लिए एक छोटा सा आप्रेशन करना होगा।'

"तो कर दो' 'नि और 'ए' मेरे तालू स ही चिपके रह गये। मैंने पानी की चाह के लिए इशारा किया।

पानी पीकर गला कुछ तर हुआ। परन्तु लगातार अपना इतना सारा खून देखते रहने से घबराहट होन लगी थी। और साथ ही लगन लगा था कि शायद मतली हो जाय। इसके बावजूद मैंने अपन पर काबू पाते हुए

उठाना— कर डालिए आप्रेशन डाक्टर साहब।' शायद पानी उतरने से गला कुछ साफ हो गया था।

डाक्टर ने समझा। गाउन की बाँह कुछ ऊपर चढ़ायी। दोबारा आँखों को मसला। बहुत धीरे धीरे एक एक लफ्ज़ को अलग अलग रखते हुए बोले— तो मेरा मतलब आइ मीन टू से यू सी यंग मैन नौजवान, यह एक पुलिस केस है। उसमें हम कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इसलिए जाओ। पहले पुलिस में रिपोर्ट लिखवाकर आओ। हाँ, ज़रा फुर्ती करो।'

परन्तु कैसे सम्भव है? क्या पुलिस वाले पुलिस वाला के विरुद्ध ? मेरे सम्मुख पूर्वदृश्य और पुलिस वालों के वहशी कहकहे गूँज गये और मुझे जैसे वहशी होने लगी।

डाक्टर ने मेरे अवरुद्ध स्वर को अपनी कल्पना में गति दी— तो पुलिस वालों से भिड़कर आ रहे हो। तब तो और भी ज़रूरी है यह सब। आखिर हमें भी नौकरी करनी है।

'मैं भिड़ा नहीं, उन्होंने ही—डाक्टर आवाज़ में अस्वाभाविक और दुर्दम्य थरथराहट थी।

ठहरो।" वे लम्बे डग भरते हुए गये और वापस आ गये—"यह टेबलेट लो। कुछ ताकत आयगी। मैं तुम्हारी बात नहीं समझ सकता। ज़रूरत भी नहीं मुझे समझाने की। पुलिस कप्तान को फोन किये देता हूँ। उनको सारा माजरा लिखवा देना। घबराने की कोई बात नहीं। शाबाश भागो। जैसे वे रेस में दौड़ाने के लिए वन, टू थ्री कर रहे हों।

पता नहीं टेबलेट का असर था या मात्र मेरी जिजीविषा। करीब आधे घंटे के अन्दर पूछते पुछाते मैं पुलिस कप्तान के बँगले जा पहुँचा।

मेरे बायें हाथ में मेरी दायाँ लहूलुहान हथेली है।

पुलिस कप्तान बस पूरी वर्दी में लैस घर से निकलने ही वाले हैं। पड़ोस में ही जाना है।

'डाक्टर साहब का फोन मिला होगा आपको। मैं उनके लड़के का सहपाठी हूँ जो आजकल

सीढ़ी उतरते से असली बात पर आओ। उन्होंने अपना डायर

निकाल ली।

'सुबह की बस से उतरा था। मैंने रेडियो से सुन लिया था कि शहर में अब पूरी तरह से शांति है। लोग अपने-अपने घरों को लौट आये हैं या लौट रहे हैं।"

दर्द की एक टीस फिर से हथेली के नीचे से उछली और मैं ठिठक गया।

'हाँ-हाँ, हरी अप, असली मुद्दे पर आओ। शांति तो आदमी के मन की चीज है।" उन्होंने दायां कंधा सिकोड़ते हुए अपना कालर दुरुस्त किया।

'जब बसें भी चलने लगी थीं तो मेरा सोचना गलत नहीं था कि सब अमन चैन हो गया है।"

'मैं दावे से कहता हूँ कहीं कोई गड़बड़ नहीं है। कहीं से किसी भी प्रकार की अप्रिय घटना की खबर नहीं है। तुम नौजवान हो गर्म खून वाले। तुम्हीं किसी से जरूर उलझ गये होगे। अपना चालचलन शुद्ध रखो दोस्त। मेरी तुमको यही नेक सलाह है।

अभी वे शांति और नेक मशविरे पर और लम्बा भाषण झाड़ते कि मैंने टोक दिया—

'नहीं मैं बिल्कुल अपने रास्ते जा रहा था। और मेरा भला क्या नापाक इरादा हो सकता था! आप दर्ज करें साहब तो रात में पुलिस "

'हाँ-हाँ, डोंट बी अफ्रेड, साफ साफ कहो। अब की उन्होंने अपनी लम्बी अँगुलियों से कंधे के स्टार को छुआ।

'कुछ पुलिस के जवान थे" अब मैं तेजी से बोलने लगा ताकि जल्दी बयान दर्ज कराने के बाद फौरन इस भयंकर यंत्रणा से मुक्ति पा सकूँ और उन पुलिस के जवानों के पीछे-पीछे सिर पर बहुत-सा सामान उठाये कुछ नवयुवक सामने से रहे थे। कुछ आधुनिक वेशभूषा में तो कुछ फटे हाल।

'इस रोको और देखो इसके पास क्या-क्या है।' इंस्पेक्टर ने जोर से पीछे चलते एक छोटे कद के लड़के को, मेरी ओर इंगित करते हुए कहा।

'मगर यह तो दंगई नहीं लगता सर!' देखिए नाम पूछकर दर्ज

दीजिए। दाढी वाल सब अलग स्टाइल ।'

बवकूफ की दुम, प्रतिक्रिया म वह गरज उठा। मगर फिर जान कुछ सोचकर दूसर क्षण सहज भी हो गया—'इस बात से क्या फर्क पड़ता है। खैर टटपूजिय का जान दो।' मर हल्के फुल्के कपडा की दखल हुए आदश जारी हुआ। इस पर मैं थोडा आश्वस्त हो गया। सहसा मेरी निगाह दूसर नम्बर के व्यक्ति के सामान के ऊपर के अटची पर पड़ी। भूर घाले चौखानेदार कपडे स जडा हुआ अटैची। एक कान स थाप उघडा हुआ। निश्चित रूप स मैं पहचान गया, यह मेरा था और मैं किसी आस्था के वशीभूत बाल उठा—'बडे भाइ, वह ऊपर वाला अटची मरा है।' बस यही मेरा कसूर था साहब।

एक न पूछा— तो तुम घर छोडकर क्या भाग थे ?'

क्या तुमन इसकी रिपोट लिखवायी ?' झट दूसर सिपाही ने पूछ डाला।

नहीं। कब लिखवाता ! मुझे मालूम ही कहा था ! मैं ता दा दिन की छुट्टी गुजारन गाव गया था। बाद म सुना था शहर मे दगे हो गये हैं।'

अभी सब मालूम हा जाता है बच्चू।' इस्पेक्टर न मरी ओर पिस्तौल तानकर कहा—'जरूर तुम्हार पास दो नम्बर का पसा है जो चोरी हाने पर भी रिपोट नही लिखवायी।'

नही-नही ! ' मैंन पिस्तौल चलाने से सहमते हुए हाथ स उसे रोका। बस तभी सनन की आवाज के साथ मेरी हथेली घायल हा गयी। जब तक मैं सँभलू, वे कहकहे लगाते हुए पहाडियो के बीच स गायब हो गये। ' मैंन दूसर हाथ स घायल हथेली को टेक देत हुए बात समाप्त की।

अब की बडी बेफिक्री के साथ मेरी पीठ थपथपायी कप्तान साहब ने। कहा— यग मैन डाट वरी, हम इक्वायरी करा लेंगे। पुलिस भेस म वे डाकू भी हो सकत ह। पुलिस जवान ऐसे नहा होन। जो सामान लूटते हैं दरअसल व डाकू होन ह। तुम्ह यही मानकर चलना चाहिए कि पुलिस का यह काम हरगिज नहीं हो सकता।

मैं कैसे कुछ कह सकता हूँ बिना प्रमाण के ! मैं असमजस म पड़

गया।

तब थानेदार ने कुछ सोचते रहे फिर बोले—"हाँ, एक बात मैं जरूर सोचता हूँ कि एक प्लाटून एक हफ्ते की चाँदमारी पर जरूर गयी थी। तुम नहीं जानते वहां जंगल में बड़ी बोरिंग लाइफ होती है। अगर यह वही प्लाटून हो तो हो सकता है वहाँ उनके निशाने ठीक न लग हो तभी—मेरा मतलब है तुम मेरी बात समझ रहे होगे।

मैं कहना चाहता था कि जिन घरों को उन्होंने निशाना बनाया था उनके हिसाब से पूरे निशाने न लगने में ही, हर घर को, और हर आत-जात को उन्होंने अपना निशाना बना लिया। डाकुओं का मजहब, जाति या अपनी वर्दी से क्या लेना देना। पर इस विषय में चुप्पी ही साध ली। बोला—'साहब, जल्दी से कारवाई कीजिए ताकि मैं आप्रेशन करवा लूं।"

उन्होंने जो कुछ भी थोडा बहुत नोट किया था उसे फाड डाला और कहा—'यह कोई मामला नहीं बनता। तुम मुझसे सहमत होगे कि इस तरह पुलिस को बदनाम करने से उसका मनोबल गिरता है। तुम समझदार बच्चे हो।"

'परन्तु मेरे हाथ का आप्रेशन कैसे होगा ? आप कुछ तो दर्ज करा दें।" मैंने लगभग गिडगिडाते हुए कहा।

"एक प्राइवेट डाक्टर हैं। उनका पता नोट किये देता हूँ। मेरा नाम लेना। दिक्कत नहीं होगी। बाहर रुको अभी आया।"

मैं बाहर लॉन में आकर चिट लेने के इंतजार में खडा हो गया।

हठात फाटक के पास से भारी जूतों की आवाज हुई और फिर कुछ खुसुरफुसर।

अरे, यह तो वही सुबह वाला मालूम होता है।'

'हुआ करे। बस एक अटर्ची को रो रहा है। शायद अपने जने हुए घर तक तो गया ही नहीं।"

मारो गोली। जल्दी से साहब का हिस्सा रख जाओ और आगे बढ़ो। बहुत थक गया हूँ।

दोनों मेरे पास से गुजरे। सुबह वाले ही थे। चौखाने वाला, एक

कोने से थोड़ा उघड़ा हुआ, अटैची एक के हाथ में झूल रहा था।

मैं एक निरपेक्ष दृष्टि अपनाये खड़ा रहा। मैं उनको नहीं पहचानता। अपने अटैची को नहीं पहचानता। डाक्टर को नहीं पहचानता। पुलिस कप्तान को भी नहीं पहचानता। यहाँ तक कि अपने आपको भी नहीं पहचानता।

इस सबके बावजूद एक बार फिर वही अटैची केस मेरी बंद आँखों के सामने से झूल गया। इसके साथ मेरी घायल लाल सुर्ख हथेली मन्द हवा में लहरा गयी। फिर मेरे पूरे जिस्म का चप्पा चप्पा अलग-अलग खण्डों में खण्ड-खण्ड सा करने लगा।

और मैं बेहोशी के आलम में पास की झाड़ियों में जा लुढ़का।

फिर गोली चलने की आवाज।

अब की शायद एक साथ कई गोलियाँ चली थीं और शायद इसी कारण मेरी बेहोशी टूटी थी।

मेरे सहपाठियों के स्वर थे— 'जिन्दाबाद।' मेरे लिए इन्क़लाब के उद्घोषक नारे। पुलिस अत्याचार के खिलाफ संघर्ष जारी रखने की शपथें।

इधर दूसरी तरफ से दूसरे किस्म की आवाजें— 'मारो सालों को। पेट नहीं भरा इनका। और चलाओ गोली। स्टूडेण्ट हैं कि गुंडे। राजनीति में पड़ते हैं। मजा चखा दो हमेशा के लिए। इनके बाप दादा और आने वाली औलादें भी याद करें।' कोई हुक्म जारी कर रहा था— शायद पुलिस कप्तान। फिर भाग दौड़। और फिर वापस पथराव और नारे।

मैं धीरे धीरे उठ खड़ा हुआ हूँ।

मेरी दायीं हथेली से लहू चू रहा है। मैंने इसे बायें हाथ का सहारा देना छोड़ दिया है किन्तु देखता हूँ कि कई हाथ एक साथ लहरा कर इसे सहारा दे रहे हैं। मेरी हथेली से नहीं सबकी आँखों में लहू चू रहा है।

अँधेरा

अचानक रात तीन बजे के करीब चाचाजी की नाजुक हालत की खबर देता हुआ कोई आगे इत्तलाह देकर निकल गया।

टार्च को हाथ लगाया। बेकार थी। उसी समय केशव भी याद हो आयी जो अक्सर शहर के संदर्भ में कहने लगा था—वक्त जरूरत किसी दोस्त के पास जाकर देखिए—उनके सैल लीक कर चुके होंगे।

अब मेरे लिए कठिनाई यही थी कि रास्ते में कहीं रोशनी नहीं थी। गलियों और चौराहों के साथ-साथ अँधेरा जैसे मेरे जिस्म में भी घुसने लगा था। इससे मैं कुछ भयाक्रान्त हो चला था। सफर, मैं ऐसे हालात में बिलकुल शुरू नहीं करना चाहता था। तभी केशव का एक वाक्य याद आ गया। वह कहा करता था—हर चीज का हमारे चाहने या न चाहने से जरूर कोई सबध हो ही—ऐसा कहाँ होता है !

केशव का चेहरा उस अँधेरे को चीरता-सा मेरे सम्मुख हिलने डुलने लगा। इससे मैं किंचित अधिक भयभीत हो उठा और साथ ही कुछ ऐसा भी लगने लगा कि मेरे पीछे पीछे या बगल में कोई चल रहा है।

अजीब बात है अब मैं सफर के मकसद से बेखबर होने लगा था। और फकत रोशनी ढूँढने की फिराक में कदम हो चला था।

इससे भी एक और अजीब बात यह हुई थी, कि मैं किसी चीज से टकरा कर लड़खड़ा गया था। मुझे लगा था जरूर कहीं कुछ था जो अब दूर छिटक गया है। अब पर के किसी भाग से खून रिसने लगा है। किन्तु

जल्दी ही मैं ठोकर, लड़खड़ाहट, चोट, खून जैसे बिन्दुओं से दूर हटकर कल्पना में केशव के खून से रँगे हाथ देखने लगा था। और फिर उधर से ध्यान को झटकता हुआ कुछ टटोलता-सा आगे बढ़ने लगा था।

मैं कभी तो रोशनी को पकड़ने के लिए तेज हो जाता और कभी अवरोधों का टटोलने में मेरी गति शिथिल पड़ जाती। केशव कहा करता था—या तो रोशनी ढूंढ़ लो। न मिले तो अवरोधों की तलाश जारी कर दो। फिर सारा ऊबड़-खाबड़ रास्ता खुद बखुद हमवार बन जाता है।

कुछ कदम पीछे चरमराहट हुई—जरूर कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैं रुक गया। आवाज रुक गयी। कुत्ते के रोने की आवाज सुनाई दी। मुझे लगा हो न हो ये रोशनी के लिए मुंह ऊँचा उठाये फरियाद कर रहे हैं।

मैंने आसमान की तरफ गौर से देखा—शायद चाँद दिखाई दे जाये। बमुश्किल कहीं दूर-दूर तक इक्के दुक्के तारे दीख सके थे। बाकी सितारों को बड़े बड़े दैत्याकार बादलों ने मिलकर घेराव कर रखा था।

मुझे लगा कोई मेरे नजदीक आया है। मुझे ठिठकते देख या तो एकदम से आगे बढ़ गया है या फिर निकट की झाड़ियों में जा छिपा है।

मैं फिर से फूंक-फूंक कर कदम उठाने लगा।

केशव के अनुसार क्रूर शक्तियाँ बड़ी आसानी से अंधकार में अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेती हैं। उनका हित पनपती रोशनी को हड़प जाने में निहित है। ऐसी ही ऊटपटांग बातें करता हुआ केशव किसी अंधेरी रात में खो गया था।

केशव खूबसूरत साथ ही खूब गठे हुए शरीर का मजबूत नौजवान था। पहाड़ी गाँव की तराई में रहनेवाला। कुछ लोगों का कहना है कि वहाँ आसपास के जंगलों में बहुत से खतरनाक नरभक्षियों से डर कर शहर भाग आया था। किन्तु केशव का कहना था कि वह तो जान-बूझकर उस रास्ते से निकलता था जिधर नरभक्षियों के होने की आशंका हुआ करती थी। उसने कई जंगली नरभक्षियों को मारा भी था। कोई भले ही सन्देह करे परन्तु मुझे तो उसके शरीर को देखकर तथा आवाज पर कभी अविश्वास नहीं हुआ जो उसके अदम्य साहस की परिचायक होती।

वह लकड़ी का धधा करता था। इसी सिलसिले [illegible] एक बार शहर आया करता था। नत्थिया से उनकी शादी [illegible] बहुत सुन्दर युवती थी। केशव जब जब शहर से लौटता तो [illegible] की सुख सुविधाओं के विषय म विस्तार से बताया करता। [illegible] मिनटों म मोटर-गाडिया आदमी को कहा स कहा पहुंचा दती ह। सिनमा, खल-तमाशा का रोचक बखान करता। ऊँची ऊँची बिल्डिगो म रहन वाल आसमान से बातें करन वाल लोगो का एसा वणन करता जिसस नत्थिया जसे जादूलोक की कल्पनाओ म खो जाती।

एक बार उसन केशव के सम्मुख प्रस्ताव रखा—'क्या न हम भी शहर मे जाकर बस जाएँ। यहाँ तो हर वक्त जगली जानवरो का डर बना रहता है।'

केशव लापरवाही से हँस दिया था—'नरभक्षियो की आँखो में घूरकर देखो, उल्टे पाँव लौट जाते हैं।'

'फिर भी शहर म रहन म क्या कठिनाई है ?' नत्थिया न बात को और तरीके से उठाये रखा था।

"मुश्किल तो वैसे कुछ भी नही' केशव न थोडा सोचते हुए उत्तर दिया। 'पैसे की भी हमे कमी नहीं। सभी कर्याकर्ता मेरे विश्वासपात्र है। पीछे से सारा काम सँभालते रहेगे। लकडिया शहर भिजवाते रहेंगे। तब मैं शहर की बजाय यही गाव म महीन म एक-दो बार चक्कर लगा लिया करूँगा।' उसे लगा था कि शायद स्वयं उसके जहन मे यही चाह पहले से ही उमड-घुमड रही थी।

नव-दम्पति हमारे ही मुहल्ल म एक अच्छे से मकान म जाकर रहन लगे थ।

दशहरे का दिन था। पूरा मुहल्ला मेला देखन गया हुआ था। नत्थिया उदास थी। केशव चार रोज से बाहर था। वह कह गया था कि दशहरे वाले दिन सुबह तक तो जरूर ही घर लौट आयगा। लेकिन यहाँ तो शाम भी पार होन लगी थी। दुश्चिन्ता ग्रस्त तथा विचलित मन नत्थिया समय काट रही थी।

उसी समय दरवाजे पर दस्तक हुई। और वह उत्साह से भर कर

दरवाजा खोल बैठी।

सशस्त्र डाकुओं को देखकर वह काँप उठी थी। पिस्तौल दिखाकर उन्होंने अलमारी खुलवाई। उसके सब आभूषण लूट लिए। मात्र दो मिनट के अन्दर। और चलते बने थे।

डाकुओं के चले जाने के बाद दस मिनट तक तो नथिया गुम-सुम बैठी रही फिर जैसे एकाएक उसमें आत्मविश्वास जाग उठा था—अब वह गँवार नहीं है बल्कि एक शहरी औरत है।

उसने मकान को ताला लगाया। निकट के पुलिस-स्टेशन जा पहुँची। आशा निराशा से उद्वेलित जिन्हा कर्मचारियों की ओर देखे, जल्दी-जल्दी सारा काण्ड वह सुनाया। फिर थानेदार से पूरी रिपोर्ट दर्ज करने का अनुरोध करने लगी।

रिपोर्ट लिखने से पहले हमारे लिए मौके पर जाँच करना जरूरी होता है। थानेदार ने गम्भीर स्वर निकाला। ड्यूटी पर तैनात दोनों सिपाहियों को उसके साथ रवाना कर दिया। और उनके पहुँचते न पहुँचते स्वयं भी आ गया।

एक सिपाही को दरवाजा बंद करने का संकेत कर वह नथिया से सम्बोधित हुआ— यह हार ?

'यह हार ! हाँ यह मेरा हार है। नथिया हकला गयी। समझ में न आया वह क्या उत्तर दे—या थानेदार के प्रश्न का सही अर्थ क्या है ?

थानेदार ने हार छून छून उसके गले में बाँह डाल दी। 'सच-सच बयान दो' वह डाँटने लगा था।

ओह ! नथिया इतनी तो डाकुओं के सामने भी नहीं घबरायी थी ! किसी तरह लड़खड़ाती आवाज में उसने समझाया— जल्दी में उनकी नजर इस पर नहीं पड़ी होगी।

वह डर के मारे पीछे हटी तो एक सिपाही ने उसकी कमर में कसकर हाथ डाला—'शहर वाली भी यहाँ गँवारी लगती है।

देखा—देखा। वक्त आया मन में। देखो दर्द क्या है ? थानेदार गुर्राता मगर रहा था।

फिर नथिया की आँखों के सामने पूरी तरह अंधकार छा गया

था। रात भर वह बेहोश पड़ी रही। सुबह होश आने पर उसने पाया था कि वे लोग उसका वह सब कुछ लूट ले गये हैं जिसे डाकुओं ने छोड़ दिया था।

दूसरे दिन केशव के आने पर नथिया ने रो रोकर सारी घटना कह सुनायी थी और कहा था—'मुझे गाँव लौटा ले चलो अब मुझे यहाँ के नरभक्षियों से डर नहीं लगता।' वह भयातुर होकर काँप रही थी।

'गाँव हम लोग जरूर चलेंगे,' केशव की आवाज पूरी तरह बदल गयी थी। वह कुछ समय वह हिलडुल भी नहीं रहा था लेकिन कल तक तो मुझे यहाँ जरूरी काम है। उसे निपटा कर ही गाँव चलेंगे।'

वह काम केशव ने उसी रात निपटा दिया था। उसी चौकी पर जाकर। थानेदार और दोनों सिपाहियों की हत्या करके।

हवा साय-साय कर चलने लगी थी। ऐसी ही कुछ ध्वनि पैदा करता हुआ केशव सीटी बजाया करता था। मुझे लगा शायद केशव ही मुझे छूता सा मेरे आगे निकल गया है। एक बार फिर मैं आतंकित हो उठा। तभी दूर कहीं रोशनी की झलक नजर आयी तो मैं सँभलकर फिर से चलने लगा।

सुबह केशव को पुलिस ने पकड़ लिया।

केशव की गिरफ्तारी के समय नथिया दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी। ज्योंही वह केशव की ओर बढ़ी, सिपाहियों ने बड़ी नृशंसतापूर्वक उसे दूर खदेड़ दिया—'यह सब तेरे ही कारण हुआ रांड,' हेड कांस्टेबिल समझा रहा था, 'तू जरा चुप रह जाती तो कौन-सी आफत आ जाती? आदमी तो आदमी ठहरा। क्या सब बातें आदमी को बतायी जाती हैं। आखिर तेरा क्या घिस गया था? अब चुप हो जा। सारी उम्र पड़ी है रोने को। तीन-तीन हत्याओं के बाद भी कोई फाँसी की सजा से मुक्त हुआ है?' उसने औरत में ही थूक दिया।

रास्ते भर केशव हथकड़ियाँ लगे हाथों को उछालता कोड़ा तथा बँधा या झटका देता हुआ चिल्ला चिल्ला कर अपनी तथा नथिया की पूरी दास्तां राहगीरों को सुनाता जाता था—'पहले तो मैं जंगली नरभक्षियों का शिकार करता था। अब शहरी नरभक्षियों को खत्म करूँगा।'

अभी तो सिफ तीन को ही निशाना बनाया है।'

हयातात का सिलसिला चल रहा था। अभी मुकदमा शुरू नहा हुआ था।

दो तीन बार कुछ लोगों ने नत्थिया को केशव से मिलाने का यत्न किया था। इजाजत नहीं दी गयी थी। नत्थिया कहती— ठीक ही तो होता है। क्या अब मैं केशव को अपनी सूरत दिखलाने लायक रह गयी हूँ ! मुझे तो स्वयं अपने शरीर से घृणा हो गयी है।'

एक सध्या, केशव को यह समाचार दिया गया कि नत्थिया ने फन्दा लगाकर आत्महत्या कर ली है।

अब ये साले नरभक्षी मेरा और क्या स लेंगे !' वह ठहाके पर ठहाका लगा रहा था। अब तो फाँसी से मुझे क्या डर ! लेकिन जो भी नरभक्षी मेरे नजदीक आ गया उसकी खैर नहीं'। वह मतवाला हो उठा। सीखचों को टेढा कर दिया। उसकी शक्ल इतनी भयानक हो उठी कि उसके निकट आने का किसी को भी साहस नहीं हो रहा था।

और उसी रात अतल अंधकार मे केशव जेल से फरार हो गया। फिर वह पकडा नहीं गया। कुछ लोगों का कहना है कि पागल हो गया है। उसमें बैल की ताकत आ गयी है। कभी कभार, आसपास के इलाके मे किसी सरकारी अधिकारी की हत्या का समाचार मिलता है तो लोगों के मुह पर अनायास केशव का नाम आ जाता है

मुहल्ला नजदीक आ गया था। सुबह किसी मकान से झाँकती हुई थोडी-सी रोशनी दिखायी दी। मैं चाहने लगा कि इस कहानी का कोई उज्ज्वल पक्ष भी ढूढ सकूं। मेरी गति कुछ तीव्र होने लगी। तभी काले से लिबास म लिपटा कोई आदमी ठीक मेरे सामने थुककर खडा हो गया।

कौन हो तुम ? मैं भयाक्रान्त चीख-सा पडा। आवाज कही छिन्न भिन्न होकर अटक गयी।

सचमुच मेरे पास कुछ भी नहीं है।" कहते कहते उसने जेबें उलट दी। वह गिडगिडा रहा था क्या इतनी दूर से मेरा पीछा कर रहे हो ?

"पीछा तुम कर रहे हो या मैं ?" जब मैं कुछ-कुछ सँभलने लगा था।

वह भी सँभल रहा था— ओह ! मैं अब समझ गया। आप भी तो पहले मैं समझा था कि आह ! आजकल जिन्दगी कितनी असुरक्षित हो गयी है !" उसने लम्बी साँस ली।

अपनी अपनी कमजोरी और शर्मिन्दगी को समेटने के लिए हम मुस्कराने लगे थे।

फिर हम साथ-साथ आगे बढ़ गये थे।

जड़ें

"जरूरत क्या पड़ी थी आस हरामी दे पुत्तर द घर कदम रखने की" सोहणे शाह गुस्से स कांप रहे थे।

इधर रणुका सहमती सिमटती अगल बगल देखती हुई सिर आयी आफत स छुटकारा पाने की तरकीब सोचने म गुमसुम हुई जा रही थी।

कुछ क्षणों के लिए सोहणे शाह का हाथ अपनी छोटी छोटी दाढ़ी के सफेद बाल बालों म उलझा रहा फिर हाथ को हवा म लहराते हुए गरज उठे—"जवाब दे !"

बचाव में और कुछ नहीं सूझा तो रणुका धीरे से कह गयी— भाया (भया) भी तो जाता है।'

आग की आँच म एक और शोला धधक उठा, इस वाक्य से— अच्छा सोहणे शाह बैठे बठे खड़े हो गये, लम्बा शरीर कुछ और तन गया— अच्छा तो यह सब हो रहा है मेरी नाक तले ! आन दे ओस सूअर नू पर पहल तू बात

रणुका का बाप क थ [illegible] न क लिए [illegible] का हाथ पकड़ा और कमरे म ले ([illegible] धर)मर

उस उधर छोड़ पि [illegible] पास

प- नटा कर [illegible] न वै [illegible] उस

रही हुया [illegible] का

माहणे क

"मोहणे इतना गुस्सा न कीता करे। उस दिन डाक्टर जिस नामुराद बिमारी का नाम ले रहा था, ब्लड प्रेशर। गुस्से के साथ बढ़ती है ऐसी बिमारियाँ। लड़कियाँ देवी होती हैं। इन पर हाथ नहीं उठाते। एह रेणु छोटी काकी है। चली गयी तो चली गयी, सरदार बिशन दे घर'

'उस कुत्ते दा नाम न लेना वेब,' सोहणे शाह को फिर ताव आने लगा, गर्दन को चारपाई से थोड़ा ऊँचा उठाते हुए बोला—"वह समझता था कि उनके बिना हम जिंदा ही नहीं रहेंगे। देखा दो साल पूरे हो गये'

'दो साल से भी ज्यादा।" सोहणे की पत्नी स्वर्णा रसोई से निकल कर सास और पति के पास मूढ़ा खींच लायी। वह बालों पर काली मेंहदी लगाये थी। बीच बीच में से कुछ बाल उठकर सुनहरी चमक मार रहे थे।

"अब इसकी भी सुनो।" सोहणे शाह ने कुछ उपेक्षा में पत्नी को घूरा।

किन्तु पति के शब्दों की बिना परवाह किये स्वर्णा बोलने लगी— हाँ-हाँ मैं कहती हूँ, उनको अगर कोई घाटा नहीं रहा, तो हमारा भी क्या गया इस बीच। आपके भी एक से एक नये पढ़े-लिखे दोस्त बन गये। अभी कितनी शान से निके नरेन्दर की शादी की! इसी से हमारी रिश्तेदारी भी और बढ़ गयी यहाँ। अब हमें जरूरत क्या पड़ी है, सरदारजी और सरदारनी की।"

'बस यही इसी शादी पर तो उस हरामी ने मेरी इज्जत बेचके ऐसी तसी कर दी ना।" सोहणे शाह फिर तेजी से बोलने लगे।

'बच्चों में छोटे मोटे लड़ाई झगड़े, मन मुटाव होते रहते हैं पर बड़ों को तो अपना दिल बड़ा रखना चाहिए। सारे ते रिश्तेदारों और इधर-उधर के दफ्तरों दे बाबू आढ़त वाले हमारी दोस्ती को एक मिसाल की तरह मानते थे। बड़ी बारीकी से हमारे सबधों को जानते-पहचानते थे। इसीलिए एक-एक ने पूछा, तुम्हारे वो सरदारजी दिख नहीं रहे। स्वर्णा का तो इस मामले में जरूर तमाम औरतों ने घेराव कर लिया। इन औरतों से भगवान बचाये। इनको कानों को मोरियाँ किसी की खटपट सुनने में बड़े मजे लेती हैं। अब सीधी बात बतायें तो कौन एतबार करे कि हमीं सच्चे हैं। फिर उन सालों की इतने लोगों के बीच बेइज्जती करते भी तो

अपना दिन कटता है। लोगबाग कुरेद कर हमारे ज़ख्मों पर नमक छिड़कते रहें और हमारा दिल ही जानता है कि किन किस तरह मैं परदे डाल डालकर गर्द को ढकते रहे।'

बेबे ने मोहणे की बाँह पकड़ते हुए उसे शांत करने की गर्ज़ से कहा— 'छोटी मोटी बातें कहाँ नहीं होतीं, साहणे। मैं दूर पिंड (गाँव) में थी। पूरी बात मुझे नहीं पता। पर इतना पता है दोस्त ज़िन्दगी में एकाध ही होता है जो निभाता है नये नवेले यार तो चार दिन के। मतलब निकला तो हमेशा के लिए छुप जाते हैं।"

'ठीक कहती हो बेबे ठीक," सहज भाव से साहणा बोल गया, सच्ची बेबे, बचपन में जिससे बैठ गयी, बैठ गयी। नये लख अपने बनें, वह रंगत नहीं उभरती दोस्ती में।

ते फिर मैं और क्या कह रही हूँ नया के सामने बहुत सोच सोच कर बोलना पड़ता है कहीं बुरा न लग जाये। तुम्हारी और बिशने की उच्ची गूँजती आवाज़ मैंने भी सुनी है। जो मुँह में आया कह दिया। दूसरा चुभती हुई बात को भी ठहाका लगा कर हज़म कर गया।"

'बेबे सानूँ (आपको) पूरी बात पता नहीं तो इतना क्या बोलती हैं?' स्वर्णा ने थोड़ी तल्खी से कहा 'बुरा नहीं मानते वो लोग तो क्या हमारे बीच ऐसी खिच खिच होती! हमने तो शुरू से ही ज़मीनें भी नड़े-नड़े खरीदी थी कि आने वाले वक्त में सारी ज़िंदगी के सुख दु:ख का साथ रहेगा। फिर बाबूजी की मौत के बाद हमारे पास जो पैसा आया था, तो हमने उन्हीं के पास एक बना-बनाया मकान भी लेने की सोची कि अभी तक ही साथ रहें। बिशना भाई बीच में पड़ा। मकान वाले की नीयत खराब हो गयी, कि गरजाऊ पार्टी है कुछ ज़्यादा वसूल कर लो। पर इनकी आदत तो जानती ही हो इनको गुस्सा आ गया। सौदा चौपट। बिशना भाई चाहते तो उसे आराम से उसे दबा सकते थे। मगर नहीं। वे क्या पता उनके मन की बात। परता झाड़कर किनारे। यह क्या कम धोखा है। तब फिर हम [illegible] नहीं की। हम नयी जगह मकान गड़ा कर लिया और दो मन [illegible]

[illegible] गाँव जाने के लिए ज़रा थमी तो साहणे ने मुँह मरोड़ते हुए

शब्द फौरन बाहर पड़ने शुरू हो गये— होर सुण बवे, बड़ी कुड़ी निक्की की एक घर मे बात चल रही थी। घर बहुत अच्छा था। मगर इन दोना न हमे डरा दिया कि लालची ह । बहुत मागेंगे। आपकी हैसियत नही। ऐस म तो पराया भी कहता है—फिक्र न कर यार जितना चाहिए हमस लो। शादी मकान का पैसा सब वापस आ जाता है। मगर ये मिया-बीवी चुप्पी मार गये। सारी बात ठडी पड गयी। मैं कहूँ काहे का दोस्त है यह "

'मैंनू निख दिता हुदा " बवे कुछ और कहना चाहती थी, मगर सोहणे ने उसे टोक दिया।

'अगे ते सुण। थोडा वक्त गुजरा। सयोग यही थे लड़की के भाग। पता चला कि एसे तो खास लालची लोग नही है वे लोग। तब दोबारा बात चलायी और वही बड़ी धूमधाम स शादी कर दिखायी कि यह मन देखत ही रह गये। मकान और फिर शादी मे इनकी एसी काट हुई कि बस तब से कुढे बैठे है और हमे दिखाने के लिए सुना है—थाड़ा आगे, मकान बनवाया है, इन दिना।"

इतनी मीनमेख अच्छी नही, साहणे।' बव न बटे के गुस्स को शान्त करना चाहा।

'नही यबेजी, नही, आपका क्या पता। जाने किधर स अनिल बीच म आ कूदा—"वे सारे हैं ही ऐसे। एक बार दीदी न किन्नी स प्रक्टिस के लिए हरमोनियम मागा था। साफ नट गयी कि और किसी का दे रखा है। दूसरे ही दिन की तो बात है। मै और बकी उन्ही के घर खेल रह थ। गेंद स्टोर म जा गिरी। उठान गया तो अपनी आखा स देखा। वही बाजा रखा था। सा गुरु जी।

आए तू। तू किदर सी। सुना है आजकल उमी बकी किन्नी क घर जान लगा है, क्या?

अनिल का काटा तो खून नही। एकाएक खून क इल्जाम म धर लिया गया हो जस।

पाए, यालता क्या नहीं, साहणे शाह जा इन बीच रणुका का गुनाह भूल चुक थ, दुगन वग स अनिल की तरफ लपटे। अनिल झट पीछे हट



टाफियाँ। कुछ तो और लड़कियों को खिलायी। घर नहीं लायी। आप मांगते। हैं ना ... " रेणुका के भोलेपन पर मोहणे शाह को प्यार आने लगा।

'बस बस। बहुत बकवास न कर।" अब की स्वर्णा गरज उठी।

"सच भाभी, मैं तो फिर नहीं गया," अनिल फिर जोश में आ गया। "उधर से हॉकी खेलने को निकलता हूँ ना तो बकी कहता है—नहीं आने देते तो मत आया कर। ऐसा करते हैं, मैं तेरी हाकी अपने घर धर लिया करूँगा। फील्ड में जाती बार यहीं से ले जाया करना और आती बार यहीं छोड़ दिया करना। खराब नहीं होगी तेरी हाकी। बेशक निखवा ले। बल्कि तेल और पिलाता रहूँगा। मत घुसना घर में। बाहर से आवाज़ दे देना।"

"पूरे नाटकबाज हैं साले, बाप से लेकर आगे आर पूरी उलाद, सब एक्टर हैं।"

"मैंने भी तो एक दिन यही कहा था कि बेबी एक्टर है। अनिल के होठों पर स्मित रखा आकर ठहर गयी।

"और किनी ?" रेणुका ने बनावटी उत्सुकता से पूछा।

'ओ वी (वह भी) पूरी एक्टरण।" अनिल ने उसी अदाज़ में कहा।

'ऐ मोरा (सुसरा) विशना की बेड़ा घट (कौन सा कम) एक्टर है।' मोहणे शाह हँसने लगे।

'और सरदारनी वी (भी)। स्वर्णा ने भी सबके स्वर में स्वर मिला दिया। सारा खानदान, मैं कवां (कहूँ) इनको। तो जनम ही पृथ्वीराज कपूर के घर लेना चाहिए था।'

इस वाक्य को सुनकर पूरे परिवार की हँसी घर में बहुत ऊँचे तक गूंज उठी।

मोहणे शाह इतनी ज़ोर से हँसे कि हँसते ही चले गये। फिर हँसी ने ऐसा पलटा खाया कि हँसी लंबी खाँसी में तबदील हो गयी। वे खाँसते चले गये। खाँसी रुकने का नाम नहीं ले रही थी।

बेटे ने पानी और चीनी मँगवायी।

सब बच्चों को दूर हटा दिया। स्वर्णा से थोड़ा गुस्से से कहा—'बार-

वार यह किस्सा चालू न कीता कर। जा के रोटी बणा, रात होने वाली है।"

रात के आठ बजे ही सोहणे शाह खाना खाकर लेट गये। दिन भर उन्होंने काफी लेन देन दौड़ धूप की थी। सोच रहे थे, थकावट बहुत कर गया है। जल्दी ही नींद आ जायेगी। मगर यही सोचते-सोचते दस से ऊपर का समय हो गया था। करवट पर करवट बदलते जा रहे थे। लगातार बच्चा पत्नी वैद के संवाद मस्तिष्क में ऐसी गूंज पैदा कर रहे थे "ना बाबा" मैं एक-दूसरे से गड्डमड्ड होकर घूं घूं की सी ध्वनि पैदा कर चित्त को थरथराये जा रही थी।

बचपन से ही यारी। कितना अपनापा। पल पल का साथ। तहसील रोड हवेली। नदाण मुहल्ला। गुरु नानक मिडल स्कूल। वह और वह। बिशना और सोहणा। पढ़ाई खास नहीं की। अपने-अपने पैतृक धंधे में लग गये। पहले सोहणे शाह की शादी हुई। छः महीने बाद में कुत्ते की। मैं और स्वर्णा गये। नहीं जा सकते थे। मगर गये। उधार लेकर गये। सब कुछ पूरा किया कि कहीं यार बुरा न मान ले। यारी यारी होता है। पीछे हट तो यारी क्या। पता होता तो जानवर से प्यार की पींग क्यों बढ़ाता। जानवर जानवर ही होता है। इंसान नहीं बन सकता। वाह गुरु किसी से इतना प्यार न बढ़ाना जो बाद में तकलीफ देवे।

रह-रहकर सब स्थूल अस्थूल का भावना मण्डल में एकाकार हो उठता।

पर उस कुत्ते की औलाद को होश न आयी। पहले मैंने मकान बनवाया। चलो मित्तर मज्जण तो चार कदम पर चंगा। हल्की-सी पर पट बात ही मैं थोड़ा पीछे हट गया था। आज यह जो अनिल, पराग रूप में उसी के गुणगान गा रहा है जिस वक्त हमने मकान बनवाया था तो यही अनिल कहता था कि हमारा मकान देखकर सब जलते हैं। यही बात उसने दवी में भी कह दी थी कि तुम हमारा न इतना अच्छा मकान देख कर गाता (जलन) खाते हो। चाहिए तो यह था कि बड़े बड़प्पन दिखाते। बच्चे की बात बच्चे तक सीमित रह जाती। मगर नहीं इसी बात पर

भारी बवंडर उठ खड़ा हुआ। खटपट बड़ा म भी जड़ें फैलाती चली गयी। सोचा तो एक दफा वकी न भी मुझस आकर कहा था—चाचे ! अनिल मुझे स्कूल क लड़का से पिटवाना है। तब मैंने वकी का प्यार किया था और अनिल को एसा लताड़ा कि हमेशा याद रखे। अपन नहीं, अपन यार के बेटे की तरफदारी की।

अब उस हरामी को क्या सूझी जो हमार नेड़े आकर मकान खड़ा कर दिया। जैस हमारी छाती पर मूंग दलगा। माना जमीन पहले स ल रखी थी। मगर इस बेचकर कहीं और भी तो ल सकता था। नहीं हम नीचा दिखान चला कि तुमस अच्छा मकान है। नीच नीच ही होना है। नीचता स बाज नहीं आ सकता। नीच न एक दफा तो यहा तक इल्जाम मत्थे मढ़ डाला कि तुम्हारा बड़ा लड़का नर न्दर हमार भतीज को इंटरव्यू म पास कराने क बहाने उससे खुद रुपय मारना चाहता है। अब भला एसी टुच्ची बाता का कोई क्या जवाब दे ! खुद ही जलत कुढ़त रहा। दरारें गम ही बढ़ती है। अब कोई पूछे लगी नौकरी ! शायद आज तक नहीं

पट म अपच हो रही है। साहणे शाह उठ खड़े हुए। शौच हो आय। कुछ देर तक चारपाई पर बैठे रह। फिर स लेटे तो फिर स वही बातें कितना जलील होना पड़ा इनकी खातिर ! शादी समारोहो क मौका पर आदमी का लोकलाज वास्त मुह तो दिखा जाना चाहिए कि नहीं। काहे भेजा। यह नहीं कि आकर कुछ हाथ बटाएँ, लाट साहब ने कहा—खुद नहीं आये। जैस हमें और काम न हो। बिल्कुल आखिर मे हम भी तो सभी रिश्तदारो और मिलने वालो को कहना पड़ा कि सारा ही टब्बर बीमार पड गया है। मगर तक लोगो को अनसुना करत रहते। सभी का कहना था। ऐस मौके कौन-स रोज आन हैं। कितना शममार होना पड़ता है बार-बार ! उनके बार म अगर कोई नयी खबर देता है तो हम ऐसा ढाग रचने हैं—हा-हाँ हम सब कुछ पता है।

बम्भ, ऐंठ गुमानी, डूब मर ! चार पैसे क्या आ गय, पख लग गए। मकान म नहीं हवामहल मे रह रहा है। बच्चो को आने के बहान बुलवाते हैं कि मकान देखें और तारीफ करें। अनिल और रेणुका का खिला पिला-

कर अपनी शान बघार रहे हैं। सरदारनी रोकर सच्ची बन रही है।

मोहणे शाह उठ खड़े हुए। बाहर की ठंडी हवा लगे तो शायद मस्तिष्क कुछ शांत हो।

दरवाजा ऐसे हल्के से भिड़ा दिया कि आवाज पैदा न हो। अब क्या किसी को कष्ट दूं, दरवाजा खोलने बंद करने का। थोड़ा चल पर चलने में कुछ दिक्कत महसूस हुई, जैसे एकाएक बहुत कमज़ोरी हावी हो उठी हो। वापस कमरे में आ गये। परंतु फिर लगा—कमरे में बहुत घुटन है। बाहर ठंडक है। ताजी हवा है जिसमें दो चार मिनट नहा आये थे। कोने में पड़ी हुई लाठी उठाई और फिर से उसी तरह घर से बाहर निकल पड़े।

ठक ठक। ठक ठक। रात पूरी तरह से निस्तब्ध थी। ठक-ठक। ठक-ठक। बाहर सब कुछ शांत दिखता था। पेड़ हल्की मस्ती में झूम रहे थे। ठक ठक में रात की नींद क्षणांश को टूटती और वह करवट बदलकर फिर सो जाती। अलसाती और फिर नींद की गहराई में डूब जाती। लेकिन स्वयं मोहणे शाह के अंदर यही ठक-ठक हथौड़ा के वार कर रही थी। वीरानगी भरा माहौल और बस, ठक ठक।

मगर सामने वीरानगी को तोड़ती कितनी कितनी बत्तियां एक साथ जगमगा रही हैं। क्या किसी के यहां शादी है। देखूं? हां इधर ही बताया था किसने सरदार का घर। देखूं। क्या देखूं! जैसे किसी को जलाने के लिए इतनी रात में इतनी रोशनी कर रखी है, हरामजादे ने। भाड़ दूं। ठक ठक। देखूं। देखने में क्या मुझे खा जायगा! क्या पता किसी और का घर भी तो हो सकता है। बाहर तो कोई भी नहीं दिखता।

ठक ठक। ठक-ठक।

सुनसान रात में इतनी रोशनी बाहर बरामदे की दीवारों और पर्दों का चमका रही है। अंदर में बाहर में। ताजे काटे हुए चौकोर निशान शून्य जान पर भी पुराने पायों को उजागर करते हुए दिखायी दे रहे हैं।

आग। और आग। ठक ठक। ठक-ठक।

आ गया आ आ गया। अन्दर से घबराहट आवाज उभरी। इसके

साथ अंदर का जालीदार दरवाजा खुल गया। बिशना सरदार हरी लाल खाना की लुंगी बांधे, पटटी से दाढ़ी कसे हुए बाहर निकल आया।

"आ गया चौकीदार बाबा, मैं बुलाया सी तैनू। इधर जरा ज्यादा ध्यान रखना। लुंगी (एकांत) जगह पड़ती है। तुम्हें खुश रखेंगे।"

सोहणे शाह एकटक देखते रह गये।

तब क्षणांश में बिशन सरदार के सामने बजली कौंध गयी—"ओह माफ कर दे सोहणे शाह! की शक्ल बना रखी है! की हो गया तनू! इतनी कमजोरी माफ करदे पैरी हथ लगाना। भूल हो गयी। नहीं पहचाण सकया।"

सनसनाता तेज हवा का झोंका आया। वातावरण में सिसकियाँ सुनायी दीं। 'मेरे नाल बोत बुरा होया इनां दिना। पता भी है तुम्हें।"

'मेरे नाल वी इक तो इक वध (ज्यादा) तकलीफा देखियां असी (हमने) पर तू न आया।"

'ओए-ओए पता ते लगे।" करते दोनों एक-दूसरे से सट गये।

फिर सिसकियां।

बिशने सरदार के घर वाले बाहर आ गये। उधर सोहणे शाह को ढूंढ़ते लड़के और स्वर्णा सामने आ पहुँचे।

कइयों को एक साथ सामने देखा तो सोहणे शाह ने बिशने सरदार को हल्का सा धक्का दे मारा—'हट परे हरामजादे! मैं तेरी शक्ल नहीं देखना चाहता।"

'क्यों आया कुत्ते दे पुत्तर, मैंनू जलाणे! नस जा (भाग जा) परे मर।" एक साँस में बिशने सरदार ने कहा तो आवाज भर आयी।

सोहणे शाह थोड़े पीछे हट तो बिशने सरदार ने आगे बढ़कर पकड़ लिया—'ओए शेर की औलाद आगे बढ़कर पीछे नहीं हटदी। आजा नालायक।"

फिर बहुत देर तक दोनों एक-दूसरे की छाती से सट खड़े रहे।

चलता हुआ पुल

अर्चा ने लेटे-लेटे ही साइड टेबल की ओर हाथ बढ़ाया। चूड़ियाँ सी खनक हुई। टेबल लैम्प स्विच ने खट की आवाज बल्ब तक पहुँचायी मगर बल्ब ने वह आवाज अनसुनी कर दी।

ओह! रोशनी न जाने कब से चली गयी है उसके जीवन से!" सोचती हुई अर्चा फिर से आलस में घिर गयी।

शायद सुबह सवेरे से ही बिजली गायब हो गयी थी।

वैसे भी अँधेरे में अपने आपको गुम कर लेना अर्चा की एक आदत बन गयी है। घर की एक एक बत्ती बन्द कर देती है। कहीं भी किसी कोने से नाइट लैम्प तक नहीं टिमटिमा रहा होता।

साइड टेबल पर टेबल लैम्प रखा होता है। अर्चा पढ़ती रहती है तब तक जब तक नींद उस पर पूरी तरह से हावी न हो जाय। नई पुरानी पत्रिकाएँ अखबार कहानी, उपन्यास या कुछ भी, जिसमें उसके योग्य मनोरंजन हो सके। लेकिन असली मकसद होता है नींद को बुलाना।

किन्तु पिछली रात जो कुछ उसके हाथ लगा उसने उसने उन तक पहुँचती नींद को और पीछे तक धकेल दिया था। कोई लघु उपन्यास था जिसकी नायिका का नाम वीना था। बहुत ही विचित्र जीवन वृत्त था वीना का जो अर्चा के भी मस्तिष्क को बुरी तरह से कुरेदता चला गया था, गहरी-गहरी लकीरें खींचता हुआ। प्रायः सारी घटनाएँ अर्चा के विगत जीवन से मेल खा रही थीं। वीना के पिता का आकस्मिक

निधन। पूरे परिवार में एक ही ऐसा भाई था, जो उसे समझता था।
उसकी मनोभावनाओं की कद्र करने वाला। वह भाई भी कहीं दूर-दराज
के इलाके में नौकरी लगने पर चला जाता है। वीना उसी के साथ जाना
चाहती है। किन्हीं कारणों से भाई अपनी जवान बहन को अपने साथ रख
पाने में असमर्थ है। पीछे परिवार के अन्य सदस्यों से वीना की नहीं बनती।
लड़ाई-झगड़ा होता है। उन सबकी लताड़ सहते-सहते वीना सोचती
है कि वही भाई एक पुल था। तब वह तल्खी के उस आलम से उबार
कलकत्ता चली जाती है। वहां कलकत्ता में उसकी एक सहेली बनती
है। फिर उस सहेली के माध्यम से दूसरी सहेली बनती है। कुल दो
सहेलियाँ। पहली की जल्दी ही शादी हो जाती है। दूसरी सहेली का नाम
मंजू है। मंजू और वीना के बीच पहले की भाँति संवाद कायम नहीं रह
पाते। वीना सोचती है कि पहली सहेली के रहते ही शायद, वह मंजू को
बर्दाश्त कर पाती थी। वही पहली सहेली पुल थी। किन्तु साथ ही वह
मंजू को और लोगों से घिरा हुआ भी बर्दाश्त नहीं कर पाती। अब वह
उससे दूर चले जाने की बात बार-बार सोचती है। फिर सहसा एक
दिन, उसे मंजू की शादी की सूचना मिलती है। वीना मंजू की शादी की
भीड़-भाड़ में अपने को नितांत अकेला पाती है। वह वहां जैसे अपने
आपको ढूंढती और टटोलती फिर रही है। मंजू से अलग होकर वीना को
अब मंजू की कमी बुरी तरह से अखरने लगती है। अब

यह सब आखिर क्या बकवास है! इस चरित्र-नायिका पर कौन
विश्वास करेगा!' अर्चा ने परेशान होकर किताब को बंद कर दिया
था। फिर टेबल-लैम्प के स्विच को अंगूठे से दबा कर अँधेरा कर दिया
था। सारी दिशाओं में अँधेरा है। फिर भी अर्चा अपनी आँखें कसकर
बंद कर लेती है। दिन-भर अर्चा खूब भाग-दौड़ मेहनत करती है। इस
तरह से अपने आपको थका देना भी उसकी आदत बन गयी है। इसलिए
शायद पौन एक घंटा तो उसे अपने को नींद की लपट में आ जाने का
आभास होता रहा। बाकी रात वह जैसे टेढ़े-मेढ़े झूले में झूलती रही।
बार-बार सोती जागती रही। बार-बार किताब की वीना उसके पास आती
रही। पतले-दुबले छरहरे आकार और गोरे रूप-रंग वाली वीना। जैसे

अर्चा की अपनी ही प्रतिच्छाया—बीना। उपन्यास की नायिका—बीना। बीना बार-बार अपने पतले मुलायम हाथ अर्चा के बालों तक ले जाती रही—अर्चा ! अर्चा ! ! मेरी बहना, मेरी सखी ! मैंने बहुत सह लिया अब बस तुम मेरी बात समझो। समझी तो अर्चा

अर्चा ने बार-बार सोचा, ऐसे सोने से उठ जाना ही बेहतर। पर उठकर भी क्या करे ! दूसरे कमरे से और कोई किताब उठा लाय। परन्तु वह उठ न सकी। ठीक से जाग न सकी। और न ही सो सकी।

अंत में निकट के मंदिर से घंटियों के बजने की स्वर लहरी उसके सिरहाने तक पहुँची तो उसे अच्छा लगा—चलो एक और रात कटी। तभी मुर्गे की कुकडू-कू' का अलार्म भी बज उठा, जिसने कुछ पल के लिए अर्चा को गुदगुदा दिया 'मेरे प्यारे मुर्गे !' अपने बड़े फ्लैट के आँगन के कोने में उसने एक खुला जालीदार कमरा बनवा दिया था। अपने बीहड़ पथ के इस साथी मुर्गे के लिए।

खट-खट खट खट सहसा चौंक कर उसने करवट बदली। उसे लगा, शायद अनंत काल से कोई उसका दरवाजा खटखटा रहा है जिसे वह अनसुना किये चली जा रही है। कौन हो सकता है सुबह-सुबह ? कहीं पहली सहेली तो नहीं ? कहीं अमेरिका से छोटा भाई तो नहीं लौट आया ? कहीं नीरू—उसकी होने वाली छोटी ननद तो नहीं ? हो सकता है रात वाली नायिका हो जो शायद यही कहने आयी हो कि पुल का, कम-से-कम अपने अंदर तो बना रहने देना चाहिए। पुलों को नकारा नहीं जाता। पुल के दूर हो जाने का अर्थ यह तो नहीं कि हम भूल जायें कि हमने कभी उन्हीं पुल के सहारे से इतनी लंबी यात्रा तय की है। जिंदगी में ऐसे बहुत से पुल बनते बिगड़ते रहते हैं जो स्वयं न रहने पर भी हमारे बने रहने के आधार होते हैं।

खट-खट-खट-खट रुक रुक कर जैसे पुकारती रही विचारों के बीच। कहीं अविनाश न हो। हो सकता है कोई भी न हो। मात्र भ्रम हो। भ्रमों भ्रमजाल जिसमें मैं जी रही हूँ।

खट-खट से बचने के लिए कोई रास्ता भी तो नहीं। तभी उसने टेबल लैम्प से कुछ सहारा चाहा था किन्तु रोशनी नहीं हुई थी और 'खट-खट'

अनवरत चिरस्थायी हो गयी है जैसे उसकी जिंदगी का एक हिस्सा है। अँधेरा और खट-खट।

उठकर आगन का दरवाजा खोलती है।

"मैडम !" सामने दफ्तर का चपरासी दीनू खडा हुआ है हाथ में एक लिफाफा लिए हुए—'रात छोटे डायरेक्टर साहब आये थे। साहब के बँगले पर रुके हैं। थोडी देर के लिए आफ्सि और स्टोर देखेंगे। यह लिस्ट भिजवाई है। आज छुट्टी है। आप कहीं निकल न जायें। इसी-लिए सुबह-सुबह ..."

'ठीक है !" अर्चा ने कुछ खीजकर लिफाफा झपट लिया। हाथ जोर से दीनू से टकरा गया।

'तबियत तो ठीक है, मैडम ?" उसने विनम्रता से पूछा।

अर्चा कुछ नहीं बोली, तो दीनू—'अच्छा चलूँ' कहता हुआ वापस जाने लगा।

अब अर्चा को अपनी बेरुखी पर खीज हुई। दीनू !" उसने उसे रोका। दीनू के एक-एक शब्द में उसे मुलायमियत की झलक मिलने लगी थी। उसके हाथ टकराने के क्षण मात्र में उसने अर्चा के शरीर का ताप-मान पहचान लिया था। अपने हाथ को शालीनता से वापस खींचने के ढंग में कमी नफासत थी, जैसे सहानुभूति से कुछ झनझना गया हो !

"सुनो दीनू ! एक कप चाय पीते जाओ।"

दीनू अन्दर आ गया। "मैं ही बना लाता हूँ चाय ! आपकी तबियत सुस्त लगती है," कहते हुए वह रसोई की तरफ बढ गया।

इससे अर्चा को कुछ राहत हुई। वह दुबारा पलंग पर जाकर दोहरी-सी होकर लेट गयी।

दीनू चाय बना लाया। वह पलंग के बैक पर अधलेटी होकर टिक गयी— अपने लिए मतबान से पस्ट्री निकाल लाओ।'

"पाने को कुछ नहीं लूँगा, मैडम ! बिना नहाये धोये ही जल्दी से आ गया हूँ। सुबह ही सुबह साहब के माली ने जा जगाया। मुझे भी साथ बुलाया है। एक ही तो छुट्टी मिलती है। वह भी गयी।"

'हूँ, चलो वक्त भी तो कटता है।' न चाहते हुए भी अर्चा के मुँह से

अविनाश जैसे साक्षात आ खड़ा हुआ था, अर्चा के ठीक सामने। मौन। स्तब्ध।

अर्चा कल्पना में संवाद करने लगी।

'आह! आपको क्या हो गया, अविनाश?'

'कहा कि तुम खुश होगी अर्चा! मेरे चेहरे पर तुम्हें अब अपना प्रतिच्छाया के और क्या दिखेगा! मैं पहले भी दो बार आ चुका हूँ। तुम आकर एक बार फिर से'

अविनाश याद आ रहा था किन्तु अर्चा कहीं और खोई जा रही थी। अँधेरी सन्नो-सन्नी गलियों में। ऊल जलूल किताबों के बीच। दूर-दूर तक फैली भीड़ भरी या एकांत सड़कों पर। इनमें या उनके करीबों से कहने से पैदा हुए अपने जख्मों को सहलाती हुई। सबकी उपमा के बावजूद सबसे लापरवाह बने रहने का यत्न करती हुई। या अपने आपको उस दिवाल या अपने टूटते अस्तित्व को निरन्तर टोकने के प्रयास में हुलसती खोयी हुई अर्चा।

'ओह अविनाश! तुमने क्या किया है ऐसा! कुछ भी तो नहीं!'

'भाभी आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया!' नीरू ने उसका ध्यान भंग किया।

'आओ बैठो। पहले नाश्ता करो।' अर्चा ने नीरू का माथा और बाल सहलाते हुए कहा।

"नहीं, पहले वादा करो भाभी प्लीज!'

'अच्छा-अच्छा।

'एक सीमा होती है शायद एकांत और नीरवता की पगडंडियों को पार करते रहने की!' उपन्यास की नायिका बीना बोल रही थी, अच्छा-अच्छा के बाद।

बीच तूफान

'देखिए, आप अगर मेरा मतलब है बुरा न मानें तो यह छाता मिस राम्बुका का है। मेरे कहने का बुरा न मानें। मेरा मतलब इस तरह से है जैसे इसी तरह का छाता राम्बुका मैडम का हो।'

हम लोग मौसम की करारी मार सहन के बाद साइकिलें पकड़े अपने अपने घरों की ओर लौट रहे थे। उस अजनबी नवयुवक की साइकिल के पहिये थोड़े टेढ़े हो गये थे और ब्रेकों से टकरा रहे थे। वह अपने चार पांच साल के लड़के को साइकिल पर बिठाये किसी तरह साइकिल को खींच रहा था। उसकी बीवी के पैर लहुलुहान हो गये थे। इसलिए मैं उसे अपनी साइकिल के कैरियर पर बैठाये चल रहा था।

तभी हल्की-हल्की बारिश शुरू हो गयी तो उसी ने सुझाव दिया कि अच्छा हो आप अपना छाता खोल लें और इसे (उसकी पत्नी को) पकड़ा दें जिससे शायद आप दोनों बारिश से थोड़ा-बहुत बच सकें।

छाता खुलते ही वह कुछ क्षणों तक उसे घूरता रहा था। फिर अटक अटक कर फुसफुसाने लगा था मेरा मतलब अगर आप बुरा न मानें मेरा मतलब

मेरी जगह अगर कोई और व्यक्ति होता तो वह इस 'मतलब है मतलब है' का कोई भी मतलब न निकाल पाता। लेकिन इस टूटे फूटे वाक्य को सुनकर मेरे पैरों के नीचे से दूसरी बार जैसे जमीन खिसक गयी। मैं सहसा चकरा कर रुक गया। मुझे लगा मैं पकड़ा जा चुका हूँ।

मेरे चेहरे पर जैसे हवाइयां उड़ने लगीं जिन्हें पढ़कर भी शायद वह अनपढ़ा छोड़ता हुआ आगे बोला—"देखिए बुरा मान गए ना आप। आपने इस आड़े वक्त में हम सबकी बेहद मदद की है। हम आपके बहुत अहसानमन्द हैं। मेरा मतलब यह कतई नहीं था जो आप समझ बैठे। मेरा मतलब सिर्फ इतना ही था कि इस तरह के सफेद उभरे हुए चपटे धानेदार परों वाला छाता तो मैंने जिन्दगी में मिस राम्बुका के अलावा किसी और के पास नहीं देखा। मिस राम्बुका हमें बताती है कि उनकी मदर उसे यह छाता या कह लीजिए ऐसा बढ़िया छाता दफ्तर में लाने से हमेशा रोकती है कि कहीं खो न जाय। और यह कि यह उनकी मदर को अपनी जर्मन मौसी से सौगात में मिला है। मिस राम्बुका जब-तब ऐसे ही कमर की सफेद स्कर्ट पहन एवं हाथ में छाता पकड़े अपनी लेडी साइकिल पर दफ्तर आती रहती है और बदन में बड़े सहज रूप से अपनी मदर की डांट खाती रहती है। और कभी-कभी राम्बुका का भाई भी अपनी साइकिल के साथ यह छाता ले निकलता है तो वह राम्बुका की, डाँट खाता है।

यह सब विवरण सुन कर मेरा तो जैसे रहा-सहा खून और सूखने लगा। मैं कुछ बोलूं! मैं क्या कहूँ! मैं नहीं जानता। मैं कुछ भी नहीं बोल पाया। लेकिन समझ गया कि उसका मतलब छाते के माध्यम से साइकिल से ही है जो कि राम्बुका के भाई की होनी चाहिए। इससे मैं उसकी दृष्टि में कहीं अधिक अपनी ही दृष्टि में गिरता चला गया।

मुझे अपने ख्यालों में डूबा देखकर वह नवयुवक फिर से बोल उठा—'रुक क्यों गये! चलिए आगे। मेरा मतलब यह नहीं था। आखिर और भी इसी तरह के छाते कम्पनी ने जरूर बनाये होंगे।' उसने वाक्य पूरा कर मेरी प्रतिक्रिया जाननी चाही। प्रतिक्रिया न मिलने पर फिर बोला—जब छापिए भी इस टॉपिक को। हिन्दुस्तान वाले भी तो नकल करने में माहिर हैं। हो सकता है ऐसे जर्मन छाते अब यहां भी बनने शुरू हो गये हों। क्यों?'

हाँ हाँ। दुनिया में क्या कुछ नहीं हो सकता। किसी तरह पूरी साँस से यह वाक्य मुँह से निकाल कर मैंने किंचित राहत महसूस की।

अपने घुटते हुए दम से थोडी देर के लिए उबर आया। मेरे कदम जहाँ आगे को बढने लगे।

"कृपया थोडा जल्दी। हमारी तो बारात चलने का समय होने वाला है। इसी सब चक्कर मे कितनी ज्यादा देरी हो गयी। हम तो दुपहरी से निकले हुए हैं। क्या सोचेंगे भाई साहब और दूसरे सब लोग! बजाय काम मे कुछ हाथ बँटाने के बीवी बच्चो को लेकर निकल गया, मौज मस्ती लूटने। चलिए साहब चलिए। मेरा मतलब है, अब और देरी नहीं चल सकती प्लीज।"

मुझे लगा वह बार बार मुझसे उसी प्रकार पेश आ रहा है जैसे कोई किसी चरित्रहीन अफसर या नेता के बारे मे सब कुछ जानते समझते हुए भी बस अपना काम निकालने के लिए उसके गुणगान गाये जा रहा हो।

बडी मुश्किल से मैं फिर से साइकिल खीचने लगा और पिछली तमाम परिस्थितिया या कहना चाहिए नियति की विडम्बनाओ के साथ मेरे विचार-बिन्दु जुडने लगे।

मैंने किसी जमाने मे (बरेली कालेज के जमाने मे) एक हरकुलिस की साइकिल अपने छोटे भाई ब्रजेश के साथ मिल कर खरीदी थी। पिता ऐसी स्थिति मे नही थे कि हम दोनो भाइयो को अलग अलग दो साइकिलें दिलवा सकते। हम दोनो का हर महीने जो जेब-खर्च मिलता था उसमे से कुछ रुपये बचा भी लेते थे। अब उन्ही मे से आधे-आधे रुपये मिला कर हमने एक संयुक्त साइकिल खरीदी थी। छोटा भाई स्कूल मे पढता था और मैं कालेज मे। दोनो के बीच यह तय हुआ था कि एक दिन साइकिल वह ले जाया करेगा और दूसरे रोज मैं।

लगभग इस नियम का पालन (थोडे दाव पेंच या हेरा फेरी के साथ जिसका जैसे बस चलता) हम दोना भाइयो के बीच चलता रहा।

फिर मेरी नौकरी रुवाडी मे लग गयी और (नियमानुसार) जल्दी शादी भी हो गयी। साइकिल मेरे छोटे भाई ब्रजेश के ही पास रही। मेरे हिसाब से उसने साइकिल का उपयोग भी ज्यादा किया क्योकि वह कई क्लासें फेल होता रहा। आखिरकार उसकी भी नौकरी लग गयी— गाजियाबाद ही मे जहाँ पिता जी सेवा निवृत्ति के बाद बैठते हुए थे।

एक ठीक ठीक शक्ल सूरत वाली नौकरी शुदा लड़की माधुरी से उसकी शादी भी हो गयी। उन दोनों के ही कार्य-स्थल और बाजार, मकान के पास ही थे। अतः साइकिल वहीं पड़ी-पड़ी धूल और जंग खाती रही।

एक बार जब मैं गाजियाबाद आया तो ब्रजेश से कहा—'भैया क्या न यह साइकिल मैं ले जाऊँ! मेरा आफिस घर से काफी दूर पड़ता है।' भाई ने खुशी-खुशी साइकिल ले जाने की अनुमति दे दी। साइकिल पर मैंने अपनी हैसियत से खूब पैसा खर्च कर चलने लायक बनवाया। वह चलती मगर कुछ रोज बाद चलने से इंकार कर देती। किसी ढीठ बच्चे की तरह और-और पैसे की माँग करने लगती। मेरी (गैर नौकरी शुदा) पत्नी चिल्लाती रहती—कि अपने खाने को है नहीं। इस साइकिल को (पाल कर) और खिलाना शुरू कर दिया है।

उधर परचूनी वाला दुकानदार और चिल्लाये जाता था जिसके उधार का वजन मेरे सिर पर काफी भारी हो गया था। उस तल्खी के आलम में अचानक किसी खास दिन मुझमें कारगर तरकीब यही सूझी कि इस साइकिल को बेच दिया जाय। जैसे इससे दुनिया के तमाम झंझटों से मुझे निजात मिलने वाली हो। सो यही किया। उस कालेज के जमाने की साइकिल को थोड़े से पैसा में बेच खाया। खाया तो खर क्या! जिस सीमा तक बन पड़ा, परचूनी वाले का उधार उतार दिया।

जब कुछ समय बाद गाजियाबाद घर पर इस बात का रहस्योद्घाटन हुआ कि साइकिल बेच भी गयी है तो ब्रजेश भाई ने तो कुछ नहीं कहा। वह मेरी खस्ता हालत को थोड़ी सहानुभूति से देखता था। मगर उसकी बीबी माधुरी बातों-बातों में सुनाती रहती—'भले ही साइकिल शादी से पहले की चीज थी—मगर साझी थी। बिना हमारी रजामंदगी के नहीं बेची जानी चाहिए थी। और अब कुछ नहीं तो आधे पैसे हम भी मिलने चाहिए। जेठ जी निहायत कंजूस हैं।"

ऐसी बातें जब तब मेरी श्रीमती जी के कानों से टकराती तो वह खासी गर्म हो उठती—'किसी तरह भी हो उनकी पूरी करो। चाहे किसी से भी उधार लो। पैसे इनके माथे मारो। हमेशा हमें कंजूस कहती है माधुरी रानी।

मैं उसे दबे-दबे स्वर से समझाता कि "भाई ब्रजेश तो कुछ नहीं कहता। ज्यादातर औरतों की आदत ही बडबडाने की होती है। कंजूस की परिभाषा दूसरी होती है—होने पर भी खर्च न करना। गरीब होना कोई अपराध नहीं होता।

पत्नी को यह शब्द गाली के समान लगता— "काहे के गरीब, तनख्वाह तो आपकी अपने भाई से ज्यादा है। फर्क यही है कि वे दोनों कमा रहे हैं। मैं भी नौकरी करूंगी और पहला काम—उनका हिसाब चुकता कर दूंगी।"

मैं ठंडी सांस को बड़ी मुश्किल से दबाता।

इधर भाई ने तो और शानदार चमचमाती हुई नये मॉडल की साइकिल खरीद ली थी।

अब की मैं गाजियाबाद अकेला गया था। माता जी की तबियत खराब चल रही थी। फर्ज निभाने को कुछ पैसे भी जुटा ले गया। सारा दिन उनकी देखभाल करता और दवाइयाँ खिलाता और हाथ पैर दबाता रहता।

उस शाम को भाई नौकरी से थोडा जल्दी घर आ गया था। माधुरी अभी नहीं लौटी थी।

मेरी अस्तव्यस्त हालत देखकर ब्रजेश ने मुझे माता जी के पास से उठाया। हाथ मुंह धुलवाया। मुंह पर पाउडर क्रीम मलने को दी। अपने हाथ से सिर पर तेल लगाकर कंघा किया और कहा— अब मैं माता जी की देखभाल कर लूंगा। माधुरी भी आती ही होगी। भैया तू थोड़ा बाजार वगैरह घूम कर फ्रैश हो आ।"

'साइकिल ले जाऊं क्या!" मैंने साइकिल को ललचाती आंखों से देखते हुए किसी सहमे हुए बच्चे की तरह पूछा मैं तो अपने पुराने मित्र वर्मा के यहाँ जाना चाहूँगा। बहुत दिन हो गये मिले।'

तो क्या पैदल जाओगे! वर्मा जी वाला इलाका तो पड़ता भी बहुत दूर है। रास्ता बहुत वीरान और ऊबड-खाबड है। जरा जल्दी लौटना। फिर साथ ही रोटी खायेंगे।"

बडी ही मुलायमियत के साथ मैंने साइकिल को आँगन से गली मे

निकाला। चढा। गली मे मुख्य माग। फिर एकाएक मैं पुरजोश म आ गया और साइकिल उडानी शुरू कर दी। लकिन यह क्या? कुछ ही देर म साइकिल ने ही मुझे उडाना शुरू कर दिया। ओह इतनी तेज आधी! बहुत बार मुझे बीकानेर भी ड्यूटी पर आना जाना पडता है। वहाँ की आधियाँ मशहूर हैं। वहा भी एसी भयकर आंधी चलती कभी नही दखी, जो मुझे मेरी (मेरी नही भाई की) साइकिल समेत उडा ले जाय। बाद मे मैं कहा साइकिल कहा। मेरी आंखो म धूल ही धूल। जूतो म कंकर ही कंकर। पूरा जिस्म दद से चटखने लगा। फिर चेतना मे दद की बेहिसाब परतें फैलती चली गयी। मैं काप उठा—आह साइकिल गायब! रास्ता म भटका हुआ मैं, खानाबदोश सा। वस भी गाजियाबाद के रास्ता मे पूरी तरह वाकिफ नही हूँ। आज का तो आलम ही कुछ दूसरा था।

आंधी के कुछ थमने पर म बदहवास सा साइकिल ढूट रहा था, कि मुझे यहीं नवयुवक अपने छोटे परिवार के साथ मिल गया। उसकी हालत अपनी जगह खस्ता थी। इस अधड तूफान म उसकी बीवी लहूलुहान हो गयी थी। लडके की आखें धूल कंकर के कारण दुख रही थी और गिरने पडने म साइकिल भी खराब हो चुकी थी।

वह मेरी मदद चाहता था, परन्तु मैं स्वय घबराया हुआ था। उससे कहा— आप थोडा यही रुकिए, अगर मेरी साइकिल जल्दी मिल गयी तो मैं आपके साथ चल कर आपको पहुँचा दूगा।

मेरे इस वाक्य से उसमे हौसला आया। अपने बच्चो को एक किनारे बैठा कर मुझसे बोला— "चलिए मैं भी आपके साथ चलता हूँ।"

कभी अलग अलग तो कभी साथ साथ चलकर हम साइकिल तलाश करते रहे। सहसा एक झाडी म उलझी हुई एक साइकिल की ओर हम दोनो की नजर पडी।

मेरे से अधिक वह उत्साह से भर उठा— "लीजिए मिल गयी आपकी साइकिल।"

मैंने भगवान का शुक्र किया परन्तु नजदीक पहुचने पर देखा यह भाई वाली साइकिल नही थी और न ही उतनी नयी या सुन्दर। मगर

यह एक साइकिल थी, जो मुझे मेरी विडम्बनाओं से किसी सीमा तक उबार सकती थी। मैंने कुछ क्षण तक सोचा और बड़े जोर से (इतने जोर की वजह जरूरत नहीं थी) चिल्ला उठा—"हाँ-हाँ, यही है मेरी साइकिल।"

हम दोनों ने मिल कर उस झाड़ी में से साइकिल को निकाल लिया। उस साइकिल के डण्डे पर लिपटा हुआ एक छाता भी बँधा हुआ था। इसे देखकर मेरी जबान का स्वाद अजीब तरह का कसैला-कसैला सा हो गया। मुझे ठीक से आगा पीछा नहीं सूझ रहा था। ऊहापोह की स्थिति में मैंने उस युवक का बड़े संकोच से धीरे से कहा—"चलिए साहब इस साइकिल को अभी यहीं पर छोड़कर थोड़ा और आगे देख लेते हैं। हो सकता है कुछ और साइकिलें भी इधर-उधर बिखरी मिल जायें।"

पहले वह युवक हँसा—"क्या यहाँ कोई जादूनगरी है जो सारे शहर की साइकिलें यहीं आकर पसर जायेंगी!" फिर उसने थोड़े सहज लहजे में कहा—"आपकी साइकिल मिल गयी। बस। यही तो है ना आपकी साइकिल?

"हाँ तो।" मैंने जोर लगा कर यह दो शब्द मुँह से निकाले।

"तो फिर चलिए। पहले से ही बहुत देरी हो गयी है। घर वाले चिन्ता कर रहे होंगे। मेरे भतीजे की शादी है। अँधेरा होने को है। अब बस आप हमारी सहायता कीजिए।

मैं गहरी सोच में डूबा उनके साथ चलने लगा। उसने अपने छोटे लड़के को अपनी साइकिल पर बैठा लिया और अपनी घायल बीवी को मेरी साइकिल के कैरियर पर बैठने को कहा।

कुछ आगे बढ़ने पर बूंदाबांदी होने लगी। तभी उस नवयुवक ने छाता खोलने का प्रस्ताव रखा था। छाता खोल कर हम लोग कुछ दूर तक चलते रहे एक-दूसरे का हाल चाल पूछते, दुख सुख बाँटते हुए। मगर मैंने लक्ष्य किया कि बार-बार उसका ध्यान बातचीत से हट कर छाते या साथ चला जाता। और साथ ही शायद मेरे हाथ वाली साइकिल की ओर भी।

अंततः वह रह न सका और बड़े संकोच से बड़बड़ाने लगा—"देखिए, अगर आप मेरा मतलब है बुरा न मानें तो यह छाता मिस रामबुका का

सा लगता है।"

मैं उसका मतलब उसके मतलब से कहीं ज्यादा समझता गया था। यानी यह छाता जिस साइकिल से बँधा था वह साइकिल अवश्य ही मिस राम्बुका के भाई की थी। इससे भी ज्यादा मैं अपनी मजबूरी और अपने ऊपर हुए नियति के प्रहार को समझ गया था, जिसमें मैं प्रतिपल छिलता चला जा रहा था।

अब उसका घर आ गया था। घर से बाहर चौड़ी गली में बहुत रंगीन शामियाने लगे हुए थे। उसने मुझे अंदर एक कुर्सी पर बैठाया। मैंने साइकिल को बाहर रखते वक्त छाते को उसी तरह लपेट कर डण्डे से बाँध दिया था।

नवयुवक मेरे लिए चाय-नाश्ता कहने के लिए घर के अंदर चला गया था।

कुछ देर तक मैं अपने आपको उन रंगीन शामियानों, झंडियों और गुब्बारों में खोने की कोशिश करता रहा। मैंने सोचा—इससे पहले मैंने अपने आपको इस नयी मिली साइकिल में भी खोने की कोशिश की थी लेकिन ओह

इतने में कोई लड़का मेरे सामने मिठाई और नमकीन की प्लेटें रख गया। एक महिला भी मेरे बायें, कुछ दूरी पर आकर बैठ गयी। क्या पता मिस राम्बुका ! सहसा वहां सब कुछ उलट पुलट होने लगा। जैसे फिर से भयंकर आंधी चलने लगी हो। अंतहीन तूफान मेरे अन्दर उमड़-घुमड़ आया।

मैं सब कुछ वहीं छोड़ छाड़ बिना साइकिल उठाये—वहां से चल दिया, सीधा बस अड्डे की ओर।

चौथे दिन मुझे रेवाड़ी में ब्रजेश की चिट्ठी मिली। लिखा था—वर्मा जी के यहाँ भी पूछ आया। तुम वहाँ भी नहीं पहुँचे थे। अब मोहल्ले का कोई लड़का कह रहा है, उसने तुम्हें बस अड्डे पर देखा था—शायद तुम्हीं थे।

मुझे और माता जी को तुम्हारी फिक्र सता रही है और तुम्हारी छोटी भाभी को हाय—साइकिल' खाये जा रही है। तार से अपनी खैरियत की इत्तला दो।

मर्म

वह मुझे विश करना चाहता है तो मैं कतराकर रास्ता बदल लेता हूँ।

उसका इस प्रकार धीरे से मुस्कराना मुझे कभी भला नहीं लगता। यह मुस्कराहट मेरे लिए सदा असहनीय रही है। दो एक बार तो मैंने काफी यत्नपूर्वक स्पष्ट वाणी में चेतावनी भी दी है 'मिस्टर स्वामी अपने काम से काम रखो, इस प्रकार यहाँ नाहक खड़े रहकर समय नष्ट करने की अनुमति मैं नहीं दे सकता।'

वह तुरन्त चला गया। पर मुझे बार-बार लगा—जरूर मेरी आवाज कहीं लड़खड़ा गयी थी। मैं पूरे अफसराना रौब से बात नहीं कह पाया था। और जाते जाते भी वह थोड़ा मुस्कराया था। उसकी यह मजाल? मैं अफसर किस बात का?

ओह यह ट्रेजिडी है! मैंने कई बार कोशिश की है—किसी प्रकार उसका ट्रान्सफर हो जाय। बड़े अफसरों से भी मिला हूँ। उसके विरुद्ध एक गोपनीय रिपोर्ट भी की है। उसके ट्रान्सफर के पूरे आसार भी बने हैं, किन्तु क्या?—हर बार किसी न किसी बहाने, उसका ट्रान्सफर रुक जाता है और तब उसकी मुस्कराहट बढ़ जाती है। मैं अन्दर ही अन्दर घुट कर रह जाता हूँ। उसकी मुस्कराहट मेरे भीतर जहर बनकर उतरती है।

अपने लिए की अर्जी में समय गुजार रहा हूँ। मेरा स्थानान्तरण के स्वीकृत हो जायगा। अथवा नहीं—मेरा ट्रान्सफर हो सकी तो मैं घर पर मुस्करा पाऊँगा। उसकी मुस्कराहट से बचकर भाग जाऊँगा

इस स्वामी म एक नुक्स यह भी है —वह सदा आफिसस टॉयलेट म जा घुसता है। 'तुम इधर कैस ?" एक दिन मैंने क्रडे स्वर म पूछा था।

उधर-फ्रीस्री खाली नहीं था।" इशारा करता हुआ वह चला गया था। मुने महसूस हुआ, मुह घुमात ही वह अवश्य मुस्कराया होगा।

टायलट म जाना मुमे बहुत घिनौना घिनौना लगता है। उसन भी यहा कपडे ढीर किय होग उसका एक भद्दा वाक्य—गन्द कीडे की तरह मस्तिष्क म लगातार रेगता है—नस-नस का कुतरना है। दस मास पूव जब मैंन स्वामी का टासफर रोकन की अपील फारवड करन स इनकार कर दिया था—वह यही भद्दा वाक्य बडबडाया था—चाह चाहत हुए भी भुला नही पाता। (वैस अब मैं जानन लगा हूँ—उसकी गाली गलौच की आदत नहीं हे। उस समय वह अवश्य अत्यधिक असतुलित रहा होगा)—इस पर मैंन डाट मारी थी—तो वह मुस्कराता सा विगवॉस के पास चला गया था। मैं बुरी तरह सहम गया था और वही मुस्कराहट अब तक उसके चेहर पर विद्यमान ह। काश मैं उसको यहाँ ट्रासफर पर बुलवान की जिद न पकडता। क्या झझट मान न लिया है मैंन! और अब वह वापिस नागपुर जाना नहीं चाहता।

उस रोज वह कोई फाइल लकर कैबिन म आया—उसकी मुस्कराहट देख पान स पूव मैंन जल्दी से कहा, चाहो तो मैटिनी शो में जा सकत हो। अनएम्प्लाएमट शिक्षाप्रद पिक्चर है

देख चुका हूँ साहब,' उसी प्रकार मुस्कराकर उसन अपना नीचे का होठ काटा।

मैं कट गया। जल्दी से फाइल उसस ले ली जाओ इस यहीं रहने दो।

गाव देख चुका है—नौकरी की कद्र इस कहा!

उस शाम मैं अपन विशेष कृपालु विगवॉस स उन्हा के बँगल पर मिला—'सर! मास्टर स्वामी सारी ब्राच का स्पॉइल कर रहा है

वहीं स्वामी तो नही जिस कम्पलेंट बसिस पर आपन ट्रासफर कराया

था ? वडा वखेडा मचा था ?"

'हाँ वही, वही।"

"आप तो कहते थे, यहा लाकर उसे टाइट करेंगे।"

"वह वदमाश है। इस वार उसे किसी पनिशमेंट स्टेशन पर पोस्ट किया जाय, जहाँ पानी भी न मिले।"

'खूब! आप भी क्या बच्चा की सी वातें करते है! उस समय मैंने, इस आपका 'प्रस्टीज ईशू' ले उसकी अपील पर ध्यान नही दिया, वरन शायद आप जानते है उसके पीछे यूनियन का काफी होल्ड है।"

मैंने हथियार डाल दिये।

घर लौटते हुए मस्तिष्क को लगातार कुरेदता रहा—मैं उसका 'इमीडियट बॉस हूँ—मेरे रिमार्क्स वजन रखते है। पर मुझे अच्छी सेलरी मिलती है। गुण्डो द्वारा उस पर

'पर उसमे वास्तविक बुराई क्या है।' मै नये सिरे से विचारने लगता हूँ। ऐसी कोई हरकत ? नही। वसे पूरा स्टाफ उसकी प्रशसा करता है। हेड क्लर्क उसे 'अति निपुण' मानता है। मैंने सुनी सुनाई बातो पर उसे नागपुर मे उखेडा था। हाँ उसकी अकड की आदत है—किन्तु वह इसे स्वाभिमान या आत्मविश्वास कहता है— डरे तो वह जिसने कोई पाप किया हो जिसका गिल्टी कान्शस हो।' यदि इस प्रकार ऊँचे स्वर से पेश नही आता, तो शायद मैंने ठडे दिल से उसकी बात सुनी होती। बडा देवता समझता है अपने को! वाकी सभी झूठे है !

खैर, वह सच्चा हो न हो, किन्तु धीरे धीरे यह तो स्पष्ट हो गया है—वह सत्य नारायण झूठा है। उसी का वास्तव मे ट्रासफर का नम्बर पडना था। वडे तरीके से उसने अपने दुखो का रोना रो अपने को किस रूप मे प्रदर्शित किया था—' माँ बीमार रहती है बाप पुराना रोगी है, पितामह चारपाई से उठ नही सकते मैं, अकेला ही ' शायद उसी ने नागपुर ब्राच के हैड क्लर्क से मिलकर, स्वामी के विरुद्ध झूठे आरोप गढे थे। पर इससे क्या ? बात तो स्वामी की है। लोग उसे हँसमुख कहते है होगा। किन्तु मुझे तो उसकी मुस्कराहट एक स्पष्ट

शरारत लगती है। मुझे चिढ है, तो उसका क्या दोष ? उसकी मुस्कराहट ?

लम्बी प्रतीक्षा के बाद—नई सूचना ने आज के दिन का 'एक अच्छे दिन' म बदल दिया है। बार बार टेलीफोन की घटी बजती रही। दोपहर से ही मेरे कैबिन मे साथियो का नाता जाना बढ गया था। सब मुझे 'क्लास वन के प्रमोशन के निमित्त बधाई देने आत रह। कल मेरी फेयरवैल पार्टी का आयोजन रहगा।

रात काफी देर तक घर पहुँचता हूँ। बरामदे मे एक महिला बैठी है। नौकर मुझे बताता है यह पिछले दो घटा से प्रतीक्षा कर रही ह।

महिला अपना परिचय देने के बाद, प्रार्थनापूर्ण स्वर म कहती है, 'छोटा लडका दिल्ली पढता है। दिल्ली मे एक क्लर्क की जगह खाली है। यदि रिकमैंड करें तो हमारा तबादला दिल्ली का करवा सकते ह।'

हूँ,' सोचता हूँ—इस सवाल को फिर माथ पालू ? कदापि नही।

सच कहती हूँ इस महँगाई मे हमारा दो जगह का खर्च बच जायगा।' लगता है कारुणिक स्वर मेरे चित्तपर प्रभाव डाले बिना नही रहगा। वह स्वय कहते हुए डरत हैं कही आप नाराज न हो। आप इतना अहसान अवश्य करें।'

करवा दूगा' जल्दी य वचन दे देता हूँ।

रात भर नींद नही आती। कभी लगता है अपशकुन हुआ है। खुशियो पर काली परछाइँ पडी है। यह जरूर चाल हो सकती है। मैं तो उसके लिए दिल्ली का ट्रासफर रिकमैंड करूँ—वह अपील ठाक दे, फिर ? ता पहल उससे लिखवा लूगा, क्या ? मुझे जरूरत ही क्या है ! मुश्किल स उसकी मुस्कराहट से छुटकारा मिल रहा है। दिल्ली भी साथ ल जाऊँ ? मेरा दिमाग अभी खराब नही हुआ है ! नही, मैं कदापि नही करूँगा—भले ही वचन जाता हो

दूसरे दिन आफिस पहुँचते ही स्वामी मुस्कराता हुआ सामने आ गया। साहब प्रमोशन के लिए गुड विशेज़। स्वर अहसास स दबा प्रतीत होता है, मुस्कराहट बदली-सी उत्साहवर्द्धक महसूस होती है। छल, कपट, शरारत—कुछ भी तो नही इसमे

मैं उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता हूँ। "थैंक्यू थैंक्यू—दोस्त, तुम्हारे साथ कुछ ज्यादतियाँ हुई थीं। मुझे खेद है। मगर तुम्हारा काम हो जायेगा। तुम भी हमारे साथ दिल्ली चलोगे।"

"बहुत बहुत धन्यवाद साहब!" एक एक शब्द पर जोर डालता है। लगता है एक-एक शब्द से खुशी का फौवारा फूट निकलेगा।

वह मुस्कराता हुआ अपने कमरे की ओर बढ़ गया है।

नये मोड़

आज मेरे बहुत अनुरोध करने पर प्रशात मेरे यहाँ आया था।

आज शाम अस्पताल की छुट्टी थी। आज की शाम प्रशान के साथ बिताने की इच्छा सुबह स ही तीव्र हो उठी थी। वसे तो मैं एक मुद्दत मे एकाकी जीवन जीने की अभ्यस्त हो चुकी हूँ परन्तु पिछले छ महीनो मे—जब से प्रशात की नियुक्ति हमारे यहाँ हुई है—मैं बरबस उसकी कम्पनी चाहने लगी हूँ। उसके जीवन के विषय मे इधर उधर से जानकारी एकत्र करने का प्रयत्न करने लगी हूँ।

प्रशात मुझे क्या अच्छा लगता है ? यह बात मैं कई बार सोचती हूँ। ले दकर मुझे उसकी विशेषता उसकी उदासी ही लगती है। वह हरदम शून्य मे झाकता प्रतीत होता है। एकदम खोया खोया सा। सबसे कटा हुआ। अलग-थलग। उसे ऐसी अलगाव की मन स्थिति म पाकर मुझे उससे जाने अनजाने सहानुभूति होने लगती है।

सुना है दो एक स उदास प्रकति वाले व्यक्ति, एक दूसर स मिल कर बातचीत करके अपने का काफी हद तक सुखी अनुभव करन लगत हैं। शायद उसी सुख की अनुभूति की ललक मेरे अन्दर बार-बार जागत होती है। मैंन दस बारह बार स्टाफ कन्टीन म या छुट्टी के बाद लॉन म प्रशात से बात की है। किन्तु हर बार बात बहुत संक्षिप्त रही। वह मेरे साथ भी कभी खुल नही पाया। फिर भी यह सही है कि औरो की अपेक्षा वह मुझसे कुछ अधिक बोल लता है। मुझे आदर देता है। शायद मेरी

वरिष्ठता को नजर में रख कर।

मैंने जल्दी जल्दी चाय तैयार की। प्रशांत अपनी चिरपरिचित मुद्रा में चाय पीता रहा। चुपचाप। एक दम गुमसुम-सा बना हुआ। मेरी बातों का जवाब वह एक एक शब्द में दे रहा था।

'कैसे हो प्रशांत?"

'ठीक।"

'थोड़ी और चाय बनाऊँ?'

'नहीं।"

'तो कहीं बाहर घूम आएँ?"

"चलिए।'

तब हम दोनों घर से निकल कर खुली सड़क पर आ गये थे। हम साथ-साथ चलते रहे थे। चुपचाप। और सड़क लगभग सुनसान होती चली गयी थी। मौसम में खासा खुलापन था। कितनी अच्छी हवा चल रही है प्रशांत!" मैं उस चुप्पी से बहुत ऊबने लगी थी। और बार बार उस मौन को भंग करने का प्रयत्न करने लगी थी।

मेरे इस वाक्य का कुछ अनुकूल प्रभाव रहा। सहसा प्रशांत ने जैसे आह छोड़ते हुए धीरे से कहा—"ठंड की समाप्ति के साथ जो हवा हर साल चलती है यह वही हवा है। इस हवा के साथ मुझे हमेशा लगाव रहा है। किंतु अब किसी भी चीज में पहले जैसा आकर्षण नहीं रहा।"

लगा प्रशांत फिर किसी गहरी सोच में डूब गया है। कुछ देर फिर खामोशी छायी रही। चलते चलते मेरे सैंडिल में कोई कंकर फँस गया था। मैं रुकी और कंकर निकालते हुए प्रशांत से बोली—"उड़ती-उड़ती सी बात सुनी है। अगर कहो तो पूछूँ?'

'पूछिए।" अब की फिर प्रशांत ने संक्षिप्त उत्तर दिया और आसमान की तरफ देखने लगा।

कोई मणालिनी नाम की लड़की आपके कालिज में पढ़ती थी। उसने आपके साथ अच्छा नहीं किया।"

होगा कोई ऐसा मामला। संसार में ऐसे मामलों की कमी नहीं। भरमार है।' प्रशांत ऐसे बोल रहा था जैसे इस घटना से उसका कभी

काई सरोकार न रहा हो। या वह किन्हीं दूसरे दो प्राणियों के विषय में अपनी राय जाहिर कर रहा हो।

'तो किसी एक के पीछे तड़प-तड़प कर मरने या तिल तिल कर जलने से क्या फायदा ?" मैं जल्दी में बात की तह तक पहुँचने के लिए उत्सुक हो उठी थी। थकावट प्रदर्शित करती हुई मैं नजदीक के एक छोटे पुल के चबूतरे पर बैठ गयी थी। प्रशांत ने भी मेरा अनुसरण किया और साथ आ बैठा।

मैंने अनुभव किया कि आज प्रशांत से कुछ बुलवाया जा सकता है। इसलिए उसे ज्यादा देर चुप नहीं रहने देना चाहती थी—'कुछ गलत तो नहीं कहा मैंने ?"

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद प्रशांत ने उत्तर दिया—"आप एकदम ठीक कह रही हैं। किसी एक के पीछे कुर्बान हो जाने वाले आदर्शवादी प्रेमियों के युग कब के लद चुके हैं। आज तो ' वह रुका और वाक्य को अधूरा छोड़कर फिर बोला— दुनिया बहुत लम्बी चौड़ी है। अब तो मृणालिनी वाली घटना को मात्र एक रोचक व शिक्षाप्रद कहानी समझता हूँ।

मैं अच्छी तरह समझती थी कि जो कुछ प्रशांत कह रहा है, वह सच नहीं है। वह अभी तक पूरी तरह उस घटना क्रम के जाल में उलझा हुआ है। मात्र अपने आपको तसल्ली देने के लिए ऐसी बातें कर रहा है।

प्रशांत अगर मैं ज़ोर देकर पूछूं तो आप वही कहानी विस्तार से सुना देंगे ?"

इससे क्या होगा ? उसने जैसे निःश्वास रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा—'क्या आप मेरा ट्रीटमेन्ट करने वाली हैं डाक्टर !

चलो ऐसा ही समझ लीजिए।' मैंने हँसते हुए उसका कंधा पकड़ लिया।

अब तो बहुत देर हो चुकी है फिर कभी सही प्रशांत ने फिर आकाश की ओर देखते हुए कहा— ठंड भी बढ़ चली है। चलिए लौट चलें।"

वास्तव में ठंड बढ़ने लगा था। हमारे पास स्वेटर के अतिरिक्त कोई गर्म कपड़ा नहीं था। हम उठ खड़े हुए।

लौटते हुए हमारी चाल बहुत धीमी थी। अनजाने प्रशात का हाथ मेरे हाथ म आ गया। मेरे बार-बार जोर देने पर प्रशात ने बोलना शुरू किया तो धाराप्रवाह रूप मे बस बोलता ही चला गया। जैसे वास्तव मे कोई कहानी ही पढकर सुना रहा हो—

मृणालिनी हमारे कॉलिज मे नयी-नयी आयी थी। मेरी ओर से उनके साथ कोई ऊटपटाग हरकत का न होना, जहाँ एक ओर सब छात्र छात्राओ म चर्चा का विषय बन रहा था, वही दूसरी ओर मैं स्वय इस पर कम अचम्भित नही था। लगा, मैं स्वय अपने से अनजान बनने लगा हूँ।

यह मृणालिनी ही थी जिसे देखकर मुझे जीवन म पहले पहल एक अलग तरह की अनुभूति हुई थी जिसकी रूबरू व्याख्या मैं आज भी नही कर सकता। उसके प्रति दिली इज्जत अथवा उसके व्यक्तित्व से एकाएक प्रभावित होने जसी बात ही मोटे तौर पर कही जा सकती है, जिसने मुझे उससे छेडछाड करने से रोक दिया था। वरना नयी आयी लडकी का मैं 'स्वागत' न करूँ ? यह एक अलग तरह की बात थी।

ऊषा और निशी, जो लडकियो मे मुझसे सबसे ज्यादा खुली हुई थी, इन दोनो ने तो स्पष्ट ही खिलखिलाते हुए मुझसे पूछ ही लिया— क्या, पसद नही आयी यह मृणालिनी ? इतनी बुरी तो नही है।"

मैं एकाएक उन्हे कुछ न कह पाया। स्पष्टत वे सीरियस मूड म नही थी। वे हँसती हुई पर्दा की ओट मे बढ गयी थी। मैं उन्हे क्या समझा सकता था मृणालिनी के विषय मे। मै तो खुद किसी चीज को लेकर सीरियस नही हो पाता था। मगर मुझे पहली बार लगा कि आज मेरा 'गम्भीरता' से कुछ जुडाव होने लगा है। शायद मैं उनको समझाने के लिए कुछ ठीक तरह के वाक्य जुटा रहा था कि मृणालिनी निश्चित रूप से एक अलग तरह की लडकी है। उसका व्यक्तित्व मेरे जीवन मे आयी तमाम लडकियो से एकदम बहुत ऊँचा है। विशाल है।

परन्तु मात्र किसी वाक्य को कह देने से जरूरी नही कि बात बिलकुल फिट बैठ जाय। मैं स्वय इन वाक्यो से सतुष्ट नही था निशी और ऊषा को तो क्या मैं चाहता रहा कि मैं स्वय को किसी ठोस और तर्क-सगत आधार पर उक्त बातें समझा सकूँ कि आखिर मृणालिनी म वह क्या है,

जिससे वह मेरी नजर में 'एक निहायत अलग तरह की लड़की' के रूप में आ खड़ी होती है बारम्बार। देखने में या रंग रूप में भी वह असाधारण कहाँ थी? आवाज में भी विशेष मधुरता हो ऐसी बात भी नहीं थी। चाल ढाल डीलडौल, सौन्दर्य पूर्णत साधारण था। बाहरी तौर पर देखा जाय तो वह बस एक साधारण लड़की थी। आम नौजवान लड़कियों की तरह। एक आकर्षक लड़की। फिर क्या चीज थी या क्या कारण था जो मैं यकायक मृणालिनी से बेहतहा तरीके से प्रभावित हो गया था। बस किसी ठोस तर्क के अभाव में उसके आंतरिक व्यक्तित्व की सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है। हाँ पढ़ाई में उसने आते ही धाक जमा दी थी। परन्तु मेरी नजर में यह कोई महत्त्व की बात नहीं थी। मैं लायक और होशियार स्टूडेंटस को मन और शरीर से रुग्ण की संज्ञा दिया करता था क्योंकि वे मात्र इसी पढ़ाई के बलबूते पर अपने को चमकाने में दिन रात एक करते नजर आते थे। इसका कारण शायद यही था कि मैं कम-से-कम अपनी नजर में चढ़ा रहना चाहता था। मैं हर क्लास में कम-से-कम दो वर्ष जरूर लगाने लगा था। पिता के पास कुछ अनाप शनाप पैसा आ जाता था। इसी के बल पर मैं हर जगह छाया रहता था।

यह मृणालिनी ही थी जिसने पहले पहल मुझे मेरी हीनता का बोध करा दिया था।

कॉमन रूम में कुछ छात्र छात्राएँ बैठे गप शप कर रहे थे कि एक लड़के ने अचानक मुझे बाहों में भरकर उठा लिया और मृणालिनी के सामने ला खड़ा किया— यह है हमारे कॉलेज के हीरो मि० प्रशांत हिप हिप हुर्रे

मेरा ध्यान शोर भरी आवाजों से हट कर मृणालिनी की तरफ चला गया।

मृणालिनी ने एक नजर उठाकर मुझे देखा जिसने मुझे मीठी गुद गुदी से भर दिया। किन्तु अगले ही क्षण कुछ उपेक्षा भाव से मृणालिनी हँसी— हाँ यहाँ आते ही इनकी बहुत प्रशंसा सुनी है। कालेज इनके लिए क्या है। इनका निजी सैना या निजी अखाड़ा।" कहते हुए उसने मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

उस दिन मुझे एक नया अनुभव हुआ था कि कोई किसी को एक क्षण में नजरों से उठाकर अगले ही क्षण इस बुरी तरह से जमीन पर पटक सकता है कि वह कई-कई दिना तक किसी की भी नजर में न उठ सके।

इन दो साधारण वाक्यों से जाने क्या सब के सब मौन रह गये थे। शायद मृणालिनी के शब्दों की व्याख्या करने लगे थे कि क्या यह शब्द प्रशान्त की प्रशंसा करते है या उसका मजाक उडाते है। मेरा सर आप से आप नीचा हो गया था। निश्चय ही मेरे व्यक्तित्व के खिलाफ कुछ कहने की किसी की मजाल नहीं थी। जरूर कइयों ने यही सोचा होगा कि अब प्रशान्त बदले पर उतर आयगा। मृणालिनी की खैर नहीं।

मगर मैं उस समय ही नहीं, सारा दिन चुप्पी साधे रहा। किसी के साथ हिला मिला नहीं।

इतना कहकर प्रशान्त थोडा रुका। सडक के किनारे दो बडे पत्थर रखे हुए थे। मैंने इधर संकेत किया। प्रशान्त और मैं आमने सामने बडे पत्थरों पर बैठ गये।

मुझे लगा जिस प्रकार यह विवरण सुनने में मेरी रुचि बढती जा रही है प्रशान्त भी इसे कहने से हल्कापन अनुभव करने लगा है।

आकाश पूरी तरह तारों से भर गया था। इस दौरान हमारे लिए सर्दी का अस्तित्व ही जैसे समाप्त हो गया था। मेरी मौन उत्सुकता को प्रशान्त ने समझा और आगे कहने लगा—

इसके बाद तो मैं दिन रात मृणालिनी के विषय में सोचने लगा था। लेकिन मेरी हरचंद कोशिश उससे किनारा काटे रहने की रहती।

कुछ दिनों बाद गेट में घुसते ही वह सामने पड गयी। मैं सकुचित हो उठा। चाहा हाथ जोडकर अभिवादन करूँ। हाथ उठे नहीं। एक अजीब-सी जकड़न में सारा शरीर शिथिल पड गया। मेरी यह हडबडी मृणालिनी से छिपी न रही।

हैलो' बडे सहज भाव से मुस्करा कर उसने पहल कर दी "कैसे हो प्रशान्त?

ठीक हूँ जी।" जैसे हर शब्द मेरे लबों में अटक कर सूख गया था।

किसी के प्रति आदर, निष्ठा या सद्वृत्ति रखना आम लोगों के लिए आम बात हो सकती है लेकिन मैं तो इन तमाम बातों का अपवाद था। किसी को भी क्षण भर में बेइज्जत कर देना, लड़कियों को खिलवाड़ की चीज समझना मेरे चरित्र की उल्लेखनीय प्रवृत्ति थी। लेकिन मृणालिनी को लेकर मैं स्वयं अपनी आदतों का अपवाद हो चला था।

जीवन के यथार्थ पहलू, मेरे सम्मुख अपनी सम्पूर्ण कटुता तथा नग्नता के साथ प्रकट होने लगे थे। मुझे 'हीरो' 'होगे' कहने वाले छात्र छात्राएँ और 'पापुलर स्टूडेंट' कहने वाले लैक्चरर भी मेरी पीठ पीछे मुझे क्या कहते होंगे। सबकी नजरों में मैं अव्वल नम्बर का आवारा और बदनाम लड़का था। अपने पैसे के बल पर मैं भीड़ को अपनी ओर झुका पाने में कामयाब हो जाता था। सब सोसाइटियों का सचिव बना रहता। और हर वर्ष यूनियन का अध्यक्ष पद मुझे बड़े आराम से मिल जाता। कई लड़कियों से इश्क के लम्बे चौड़े वायदे करना और तोड़ना मेरा मनोरंजन था। कई लड़कियाँ तो सब कुछ जानते-समझते हुए भी मेरे पैसों से कुछ ऐश कर लेने में कोई हर्ज नहीं समझती थीं। कुछ भोली भाली लड़कियों को मेरी सोहबत के बड़े हानिकारक परिणाम भुगतने पड़े थे।

बातों का सिलसिला लम्बा है। इतना लम्बा कि मुझे सब कुछ भूल जाना चाहिए था। लेकिन उस जिंदगी की जरा-जरा सी घटना न चाहते हुए भी मेरी आँखों के सम्मुख हरदम साकार हुई रहती है।

एक दिन मैंने मृणालिनी को बहुत उदास उदास और खोया खोया-सा पाया। इससे पहले वह हमेशा बड़ी स्मार्ट और तेज कदमों से इधर उधर आती जाती नजर आया करती थी, जिससे लगता था इस लड़की में जान है। कुछ कर गुजरने की तमन्ना हर समय साथ लिये फिरती है।

मृणालिनी की उस दिन की मन स्थिति से मुझे दुःख-सा हुआ। खाली पीरियड में जाकर कारण पूछा।

"कारण जान कर आप क्या करेंगे। मैंने सुना है आप भी ऐसी कई हरकतें कर चुके हैं जिनसे कई लड़कियों का जीवन बरबाद हो चुका है। आप स्वयं कुछ सहायता करेंगे मुझे ऐसी आशा नहीं।"

मैं ऐसे उत्तर के लिए तैयार नहीं था। बुरा भी लगा। पर सबसे

बुरा यही लगा कि मृणालिनी मुझको बुरा लड़का समझती है।

मेरे मन की बात स्वतः मेरे होठों पर आ गई—'मृणालिनी जी आपकी नज़रों से गिरना मेरे लिए असह्य है। एकदम पीड़ादायक। आप मुझे जो भी आदेश देंगी, मैं हाज़िर हूँ।'

बाद में एक लड़के से एक लड़की के प्रेम-पत्र वसूल करने के लिए मुझे पाँच सौ रुपये खर्च करने पड़े। चाहता तो उसे पिटवा कर भी यह काम करवा सकता था, परन्तु मुझे कई कारणों से यह रास्ता उचित न लगा। इसी प्रकार एक बार किसी लड़की का अबाशन करवाने के लिए भी मृणालिनी ने मुझसे रुपयों की मदद ली थी।

इन सब कार्यों में मृणालिनी का मुझे साझीदार बनाने का उद्देश्य मुझे यही नज़र आया कि उच्छृंखल युवाओं द्वारा की गयी इस प्रकार की ज्यादतियों के प्रति मैं सजग हो जाऊँ। वास्तव में इन घटनाओं में पेश होने वाले दुष्परिणामों को निकट से देखने से मेरी आँखें खुल गयीं। मुझे स्वयं तक से घृणा होने लगी। इस प्रकार धीरे धीरे मैंने इस तरह की बेहूदा हरकतों से अपने आपको अलग कर लिया।

इसका परिणाम यही हुआ कि मैं मृणालिनी के अधिक निकट आता गया। वह मुझसे लम्बी चौड़ी बातें तो नहीं करती थी किन्तु जितनी देर भी बात करती एक सहज मुस्कान उसके चेहरे पर विराजमान रहती। मुझे लगता, वह समय देकर मुझे उपकृत करती है। अब तो वह मेरे चरित्र की भी प्रशंसा करने लगी थी।

उस वर्ष मैं फिर बी० एस सी० में फ्लक हो गया था। और यह मेरे जीवन में पहला वर्ष था जब मुझे फेल होने का वास्तव में कष्ट हुआ था।

मृणालिनी एम० एस-सी० में प्रवेश पा चुकी थी। मुझे शुरू-शुरू में बहुत डर-सा बना रहा कि शायद मृणालिनी मुझसे बात न करे। हो सकता है मुझसे घृणा भी करने लगे।

मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। बल्कि उसने मेरे प्रति, मेरे भविष्य के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। इससे मैं और द्रवित हो गया। मृणालिनी के प्रति मेरे मन में अधिक आदर पैदा हो गया।

हमारी मुलाकातें पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गयी थीं। कभी-कभी तो हम इतने निकट बैठे होते मानो सांस से सांस टकरा रही हो। बस यह अधिकतम सीमा थी और हमारे संयम की अग्नि-परीक्षा भी—जिसकी सफलता का श्रेय मृणालिनी को जाता है। इन मुलाकातों को देखकर कुछ लोग धीमे स्वर में फिकरे भी कसते। मगर इससे मृणालिनी जरा भी विचलित नहीं होती।

मुझे धीरे धीरे यकीन होने लगा कि मृणालिनी मुझसे प्रेम करने लगी है। फिर भी इस विषय पर चर्चा चलाते हुए डर लगता—अगर उसकी ओर से नकारात्मक ध्वनि सुनायी दे जाय तो मेरा क्या हाल होगा! इससे तो यही स्थिति बहुत संतापजनक है। यही सोचकर चुप्पी साध जाता। इस प्रकार स्थिति यथावत बनी हुई थी।

एक बार बातों बातों में पढ़ाई की बात चली तो मृणालिनी ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'यदि इस साल भी तुम रह गये तो मैं तुमसे बोलना छोड़ दूंगी।'

इस एक वाक्य से मैं इस कदर घबरा गया कि बस उसी दिन से खूब मेहनत से किताबों पर छाया रहने लगा। पुराने साथी मेरे इस प्रकार के परिवर्तन एवं आचरण से आश्चर्य प्रकट करते और मुझसे मीठे मीठे मजाक भी करते। मगर मैंने अनुभव किया कि मुझमें वास्तव में कोई दूसरा प्रशांत आ समाया है जिसे अब दुनिया की किसी आलोचना प्रत्यालोचना की परवाह नहीं रही। यदि परवाह है तो बस केवल मृणालिनी की। लगा, दिन प्रतिदिन मृणालिनी का जादू मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छाता जा रहा है।

उससे अगले वर्ष मैं अच्छे नम्बरों से परीक्षा में सफल रहा। मृणालिनी का व्यवहार मेरे प्रति पहले से अधिक सहिष्णुतापूर्ण बनता आ रहा था। उसने मुझे बड़ी गर्मजोशी से बधाई दी थी।

अब मेरे मन का डर किसी कदर कम होने लगा था।

एक दिन मन को पक्का करके मैंने मृणालिनी के सम्मुख विवाह-प्रस्ताव रख दिया। मृणालिनी पहले थोड़ा हंसी। फिर गम्भीरता से बोली—'सोचो लोग क्या कहेंगे! अब भी मुझसे एक क्लास पीछे हो।'

मैं सकते मे आ गया। मुझे ऐसे उत्तर की आशा नही थी। घोर निराशा मे मुह लटका कर चलने लगा तो वह बोली—'चिंता क्या करते हो! इन सब बातो के लिए बहुत समय पडा है। पहले पढाई तो पूरी कर लो। इधर मैं भी। फिर हम दोनो के बीच किसी प्रकार का अन्तर नही रहेगा।"

इसस मुझे कुछ हौसला हुआ।

मैं और मन लगा कर पढने लगा। मुझे अब मृणालिनी से बात करते हुए थोडा सकोच होने लगा। किन्तु वही मेरे इस सकोच को तोडती रहती। स्वय आगे बढकर बातचीत शुरू करती। मेरा हाल पूछती। मेरी पढाई की प्रगति जानती। कोई अडचन होती तो मेरी सहायता करती।

निश्चित रूप से मैं इसके बाद कभी फेल नही हुआ बल्कि अच्छी डिवीजन से पास होता रहा।

मृणालिनी अब इसी कॉलेज मे रिसर्च कर रही थी।

मैंने अब फिर शादी की बात की तो उसने लगभग पहले सा उत्तर दिया—'उतावली किस बात की? मेरे बारे में भी तुम कुछ सोचते हो या नही? जब तक तुम्हारे जीवन मे स्थायित्व नही आ जाता, मैं तुम्हारे साथ घूमने को कतई तैयार नही हो सकती। और मुझे भी निर्विघ्न अपनी रिसर्च पूरी कर लेने दो।" इन दिनो मैं मृणालिनी की सलाह या आदेश से मैडिकल मे पढ रहा था।

मुझे बहुत बुरा लगा। बडी अजीब लडकी है यह मृणालिनी। वैसे तो बडी मीठी-मीठी बातें करेगी। मगर जब विवाह की बात करो तो खुश्क-खुश्क उपदेश देने लगती है। आखिर वह चाहती क्या है? उसका मकसद मुझे बहुत बाद मे मालूम हुआ था। ओह! प्रशात लम्बी सांस लेकर थोडी देर के लिए चुप हो गया। फिर बोला—

मैं करीब पद्रह दिन तक मृणालिनी से किनारा किये रहा। यह भी नही बोली।

अचानक एक दिन बाजार मे मिल गयी। मेरे निकट आकर बोली—'नाराज लगते हो प्रशात! मैंने कोई गलत बात तो नही कही थी।'

'मैं आपकी किसी बात को गलत नही कह सकता, लेकिन आपका

मेरी चिन्ता भी होने लगी, यह मेरा सौभाग्य है।" मेरा स्वर मुक्त था।
फिर व्यग्र वा मृणालिनी न समझा। बहुत मदु स्वर मे बोली—प्रशात, न जाने क्यों जिस दिन म तुम्हारे सम्पक म आयी थी, उसी दिन से तुम्हारे भविष्य की चिंता मुझे सताने लगी थी। मुझे विश्वास है भविष्य इस बात को सिद्ध कर देगा।"

जैसा कि प्राय होता था उस दिन भी मैं मणालिनी क सम्मुख अबोध बालक बनकर उसकी सारगर्भित सक्षिप्त वातो को सुनता रहा।

हम लोगो न साथ-साथ चाय पी। आध-पौन घटा पाक म भी साथ रहे। एक बार फिर उसन मुझे पढ़ाई के प्रति अधिक सतर्क रहने की हिदायत दी। और फिर हम विदा हो गय।

मैंन मडिकल की सब क्लासें ढग न पास कर ली। और अब मुझम खासा जोश था—मृणालिनी को पा लन का। उस मृणालिनी को पा लन का जो मेरे साथ एक विचित्र सा खेल खलती चली आ रही थी। थोडी निकट आकर आग बढ जाती —मुझे तज दौडन के लिए अधिक प्रोत्साहित करती हुई जैसे कहती—लो मुझे छू लो, छू लो। छू लो मुझे। बस जरा और और आग आओ। जरा और मैं आग बढता तो वह छिटक जाती। दूर।

हर वर्ष यही खेल चलता रहा

इधर मेरी हास्पिटल म नियुक्ति हुई उधर मृणालिनी जबलपुर चली गयी। एसी गयी कि फिर लौटकर ही नही आयी।—कहते-कहते प्रशात का स्वर एकदम बोझिल हो गया।

मैंने उसका हाथ पकड कर उठाया। फिर हम लोग चलन लगे। शहर म लगन वाले पहले रेस्तराँ म हम लोग चाय के लिए कहकर एक केबिन में जा बैठे।

फिर क्या हुआ प्रशात ?"

उसी अलसाये स्वर म प्रशात बोला— बस यही कहानी समझिए। होना क्या था। आप जानती ह। इसीलिए उस शहर से होकर मैंने यहाँ की ट्रासफर माग ली थी। मैंन मृणालिनी को कई पत्र लिखे। किसी का उत्तर नही आया। समय गुजरता गया। मृणालिनी का पता मेरे

बहुत अधूरा-सा था। निरन्तर संदेह बना रहता कि क्या पता, मेरे पत्र उस तक पहुँचते भी हैं कि नहीं। इसी प्रकार छ मास गुजर गये।"

अब मैं स्वयं जबलपुर जाने की तैयारी करने की सोच रहा था। उन्हीं दिनों मेरा एक मित्र संतोष किसी कार्यवश जबलपुर जा रहा था। मैंने उसी से प्रार्थना की कि वह इस पते पर मृणालिनी से मिलने की चेष्टा करे। यदि वह वहीं है तो मैं जबलपुर जाऊँगा।

संतोष ने आकर जो कुछ मुझे बताया उसने मुझे एकबारगी तोड़ कर रख दिया। मृणालिनी उसी पते पर उसे मिली थी परन्तु संतोष मेरे लिए बहुत बुरी खबर लाया था। मृणालिनी ने जबलपुर में किसी से शादी कर ली थी। पुष्टि में मृणालिनी का पत्र था।

मृणालिनी ने लिखा था—"यह रिश्ता मेरे माता पिता ने बहुत पहले तय कर रखा था। और जब मैंने स्वयं भी लड़के को देखा-परखा तो वह मेरे योग्य ठीक निकला। मेरे सामने अब कोई कारण नहीं था कि अपने माता पिता का वचन टूटने देती।

रही तुम्हारी बात। तुम्हारे साथ मुझे 'प्यार' नहीं था। कभी रहा ही नहीं। तुम्हारे साथ विवाह करने की आकांक्षा तो कभी मेरे मन में थी ही नहीं। सहानुभूति अवश्य हो गयी थी। जिस तरह तुम्हारा झुकाव मेरी ओर होता चला गया उससे मुझे प्रेरणा अवश्य मिली। उस प्रेरणा में अटूट विश्वास मिश्रित हो गया कि मैं या मेरे जैसी कोई लड़की ही तुम्हारा उद्धार सुधार कर सकती है। तुम्हें सद्गुणों से अलंकृत कर सकती है। मैंने ऐसा कहीं पढ़ा था—इसी से इस दुष्कर प्रयोग को कर गुज़रने की प्रेरणा से मैं ओत-प्रोत हो गयी थी। मैंने वह सब किया जिसे क्रियान्वित करने के लिए किसी स्त्री को सौ दफा सोचना पड़ सकता है। और अब तक भी इस प्रयोग की सफलता पर बार-बार पुलकित हो उठती हूँ। कुपथ का परित्याग कर तुम एक अच्छे नागरिक बन गये। बस। मेरी यही तो मनोकामना थी। इससे अधिक किसी उपलब्धि की तमन्ना तुमसे लेकर मैंने कभी नहीं की थी।

एक बार यह पत्र पढ़कर तुम सोच सकते हो कि मैंने तुम्हारे साथ दगा किया है। किन्तु इस बात पर तुम्हें बहुत धैर्य से विचार करने की

आवश्यकता होगी। जिस तरह तुम मुझे खुश और सुखी देखना चाहते थे ठीक यही मैं भी चाहती थी तुम्हारे लिए। जिस प्रकार मैं तुम्हें तुम्हारे वर्तमान में देखकर संतुष्ट हूँ—वैसे ही मेरे वर्तमान और मेरे स्वतंत्र चिंतन के प्रति तुम्हें न्याय दृष्टि अपनाने का अनुरोध करती हूँ। जीवन-साथी के स्तर पर जुड़ना कोई आवश्यक शर्त नहीं होती। रही तुम्हें ठेस लगने की बात जिस रूप में तुम मुझे देखते रहे—यह स्वाभाविक ही है। लेकिन मुझे इसका कोई दुख नहीं। तुमने कई-कई लड़कियों को कलंकित कर उनके मन को दुखाया। उनका भविष्य उजाड़ा—उस सबके एवज में यह सजा कोई खास सजा नहीं। इसे तुम्हें सहृदयतापूर्वक सहना चाहिए।'

'कुछ देर के मौन के बाद प्रशांत पुनः बोला—'अब तो समय गुजरने के साथ मुँह से अनायास यह शब्द भी निकलने लगते हैं—मृणालिनी, तुम वास्तव में कितनी महान हो! तुमने बहुत बड़ा रिस्क लेकर बहुत ऊँचा काम कर दिखाया। तुम्हारा परीक्षण सफल रहा।"

× × ×

प्रशांत ने कहानी समाप्त की तो जैसे पूरा वातावरण खामोशी की अतल गहराइयों में भर गया। स्वयं मैंने अपने आपको किसी बड़े शून्य में टँगा पाया। कितनी ही देर मैं एकदम से गुमसुम बनी रही थी। लगा जैसे सब प्रशांत ने अपना सारा मौन मुझे और दिया है। मृणालिनी मृणालिनी! मैं बस कल्पना में एक चेहरे को रचे जा रही थी, जो मृणालिनी का था। एक विशिष्ट चेहरा।

हमने एक एक प्याला कॉफी और मँगाई और चुपचाप बैठे पीते रहे। अपने-अपने रास्ता को चलने से पूर्व हमने मुस्कराकर एक दूसरे का अभिवादन किया।

उस दिन के बाद प्रशांत धीरे धीरे मुझसे खुलने लगा। हम दोनों हमेशा खुली मुस्कराहट से एक दूसरे का स्वागत करते और अपनी-अपनी ड्यूटी पर व्यस्त हो जाते। प्रशांत को थोड़ा खुश देखकर मुझे सुख मिलता। प्रशांत का सही ट्रीटमेंट देने में मैं किसी सीमा तक सफल हुई हूँ।

कोई तीन महीने गुजर होंगे कि अचानक जल्दी की वजह से हम दोनों दरवाजे के नजदीक कॉरिडोर में टकरा गये।

"मारो,' कहकर मैं थोडा पीछे हट गयी।

प्रशात मुस्कराया। मेरे कान मे फुसफुसाता हुआ तेजी से निकल गया—"आप तो मणालिनी की तरह नहीं करेंगी ना।"

'ओह!' उसके जाते ही मेरा मस्तिष्क चकरा गया 'तो बात यहा तक आ पहुँची है। मैंने तो ऐसा कुछ नही सोचा था।

मैं अनमने ढग से अपनी ड्यूटी करती रही। रह रहकर प्रशान का वही वाक्य, 'आप तो मणालिनी की तरह नहीं करेंगी।' मेरे चारा ओर जैसे गूजता रहा। एक क्षण यह वाक्य मुझे मधुर झकार करता सा सुनायी पडता तो दूसरे ही क्षण इसके एक एक शब्द से वितृष्णा होने लगती। परन्तु यह शब्द अस्पताल से घर और घर से अस्पताल तक मेरा पीछा नही छोडते। मैं लगातार प्रशात से किनारा काटती रहती।

फिर एक दिन वह मेरे निकट आकर खडा हो गया और धीरे से बोला—"आप बुरा मान गयी। क्षमा कर दीजिए। इतना कहकर वह चला गया। स्वर बहुत बोझिल था और निराशायुक्त।

उसी रात बहुत देर तक बैठकर मैंने प्रशात को पत्र लिखा— बडी अजीब बात है मुझे भी मणालिनी ही की तरह आपमे सहानुभूति थी। परन्तु मैंने अब निश्चय कर लिया है कि मैं मणालिनी नही बनूगी।

हालाकि आपसे मेल जोल बढाते वक्त मेरे अन्दर ऐसी कोई बात नहीं थी। चार वर्ष पूर्व जब मैं विधवा हुई थी तब से अब तक इस तरह की चाह की कभी कल्पना भी नही की थी। यह भी कल्पना नही की थी कि इस जिंदगी को नये सिरे से जिया जा सकता है। अब भी मानस-पटल पर छाये सस्कार मेरे आडे आ रहे हैं लेकिन प्रशात! तुम्हारे सम्पर्क मे पूर्ण रूप से आने के लिए इस सीमा को लाघना ही होगा।

यह बात मुझे खुद को भी नही जँच रही कि दूसरो को मैं जीने का नया ढग सिखाऊँ और खुद दूसरे ही ढग से जीऊँ।

□□